वर्ष–2, अंक–12
इंटरनेट संस्करण : 75

पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
फरवरी 2013

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

आईये, आभार प्रकट करें

9वें विश्व हिन्दी सम्मेलन–2012
में सम्मानित विदेशी मूल के हिन्दी–प्रेमी विद्वानों के
कृतित्व, हिन्दी के लिये उनके योगदान को
उजागर करने में सहयोग कीजिये
धन्यवाद कहिये!

विद्वानों के नाम हैं :

डॉ. पीटर गेराल्ड फ्रेडलान्डर, ऑस्ट्रेलिया

प्रो. सेर्गेई सेरेबिरयानी, रूस

मार्को जोली, इटली

प्रो. ल्यू अन्वूक, चीन

डॉ. श्रीमती बूधू, मारीशस

श्री बमरूंग खाम, थाइलैंड

प्रो. उपुल रंजीत हेवाताना गामेज, श्रीलंका

सुश्री वान्या जार्जिवा गंचेवा, बुल्गारिया

श्री जबुल्लाह 'फीकरी', अफगानिस्तान

श्री भोलानाथ नारायण, सूरीनाम

सुश्री कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या, उक्रेन

डॉ. कृष्ण कुमार, ब्रिटेन

श्री इंदुप्रकाश पांडेय, जर्मनी

श्री सत्यदेव टेंगर, मारीशस

प्रो. टिकेदी इशिदा, जापान

श्री विजय राणा, ब्रिटेन

श्री वेदप्रकाश बटुक, अमेरिका

जानकारी भेजने के लिये ईमेल पता है :
garbhanal@ymail.com

अपनी बात

विगत १६ दिसम्बर को देश की राजधानी की बस में हुए सामूहिक बलात्कार काण्ड के परिप्रेक्ष्य में संवाद माध्यमों में चर्चा का ज्वार उठा है। भावनात्मक उच्छवास के साथ-साथ इस प्रकार की घटनाओं की विभिन्न प्रकार से व्याख्याएँ की जा रही हैं। अधिकतर टिप्पणियों से लगता है कि ऐसे दुष्कर्म आज के भारतीय समाज की ही समस्या हैं। आधुनिक विकास के फलस्वरुप उभड़े असमान समाज के अनेक लक्षणों में से एक के रूप में इसकी पहचान की गई है।

मोहन भागवत ने पारम्परिक एवम् आधुनिक भारतीय समाज (भारत-इण्डिया) की बात की तो ख्यात लेखक श्री चेतन भगत आज के भारतीय समाज को चार विभिन्न हैसियत की श्रेणियों में विश्लेषित कर परीक्षण करते हैं। उनके अनुसार आज के भारतीय समाज में राजनेता एवम् उद्योगपति की निर्णायक भूमिका है, किन्तु इन दो श्रेणियों को एक तीसरी श्रेणी नियंत्रित करती है। इस तीसरी श्रेणी में वे लोग जिन्होंने एक हद तक समृद्धि एवम् शिक्षा हासिल कर ली है। ये आबादी का लगभग १० प्र.श. हैं, इस श्रेणी के लोगों का जीवन आसान नहीं होते हुए भी इन्हें एक आधारभूत स्तर उपलब्ध है। पर इन्हें सहज न्याय, पुलिस की सुरक्षा और जिम्मेदार नेता उपलब्ध नहीं हैं। हाल के वर्षों में इस तीसरी श्रेणी को एक नई शक्ति मिली है। वह है मीडिया की शक्ति। इस श्रेणी के लोग क्रयशक्ति से युक्त हैं और विज्ञापनदाताओं द्वारा बेची जानेवाली वस्तुएँ खरीदते हैं। इसलिए मीडिया उनकी रुचि से संचालित होता है। सामाजिक मंचों पर भी तीसरी श्रेणी का दबदबा है। यह शक्ति वास्तविक एवम् असरदार होती है।

हाल का दिल्ली सामूहिक बलात्कार मामला तीसरी श्रेणी से ताल्लुक रखता था। इस श्रेणी ने अपने आपके ऊपर खतरा महसूस किया और इस पर बहस एवम् चर्चा की जरूरत समझा। लेकिन इसी प्रक्रिया में उन्होंने खुद को अनजाने ही नुकसान पहुंचाया। क्योंकि उनकी अच्छी नीयत के बावजूद हो-हल्ला के जरिए उन्होंने जाहिर कर दिया कि उन्हें विराट चौथे वर्ग के मुकाबले केवल अपनी ही परवाह है।

चौथी श्रेणी देश की जनसंख्या का ९० प्र.श. है। इस श्रेणी को सीमित शिक्षा, जीवन के न्यूनतम स्तर और बेहतर भविष्य का कोई आश्वासन उपलब्ध नहीं रहता। इसमें किसान, झुग्गी झोपड़ियों के रहने वाले, घरेलू कामकाज करने वाले और ऐसे करोड़ों लोग जिन्हें सेहत, शिक्षा एवम् मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। टीवी पर वे नहीं आते, इण्डिया गेट पर इनका प्रदर्शन नहीं होता।

वाशिंगटन पोस्ट में प्रकाशित ओल्गा खाज़न एवम् रामा लक्ष्मी के 10 reasons why India has a sexual violence problem शीर्षक आलेख में नई दिल्ली को भारत की 'बलात्कार की राजधानी' का नाम दिया है। उन्होंने भारत की अपर्याप्त एवम् शिथिल पुलिस प्रणाली के साथ सुस्त न्याय प्रकिया और परम्परा के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त भारतीय पुरुषों की मानसिकता को ऐसे अपराधों के मूल में पहचाना है। ऐसी टिप्पणियाँ ऐसा सुझाव देती प्रतीत होती हैं मानो ऐसे सामाजिक दुष्कर्म भारत की स्थानीय खासियत हो, जो भ्रामक है। जेण्डर पर आधारित दुष्कर्मों एवम् अपराधों पर भारतीयों का एकाधिकार नहीं है।

एक घटना की चर्चा प्रासंगिक है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक स्कूल गए थे। बच्चों से उन्होंने पूछा कि बड़े होकर वे क्या बनना चाहते हैं। किसी ने डॉक्टर, तो किसी ने इंजीनियर, शिक्षक, कवि, कलाकार इत्यादि विभिन्न सम्मानित पहचान पाने की इच्छा व्यक्त की। गुरुदेव ने उनका उत्तर सुनने के बाद कहा - 'तुम मनुष्य बनो। डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, कवि, कलाकार इत्यादि अनेक हैं, होते रहेंगे। लेकिन मनुष्य की बहुत कमी है, सो मेरा आशीर्वाद है कि तुम मनुष्य बनो।'

मनुष्य बनना क्या होता है? जीव जगत की अन्य प्रजातियों की तरह मनुष्य भी प्रवृत्तियों की ताड़ना से संचालित होता है। पर वृहत् जन्तु समुदाय में मनुष्य एक अनोखापन रखता है कि उसकी प्रवृत्तियों पर सामाजिक एवम् सांस्कृतिक संस्कारों के विवेक का नियन्त्रण एवम् अंकुश रहा करता है। यह विवेक उसे एक आचार संहिता से सज्जित करता है, जो उसे अपनी आवश्यकताओं पर दूसरों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने को प्रेरित करता है। मनुष्य का आचरण प्रकृति के नियमों के साथ-साथ समाज एवम् संस्कृति द्वारा परिभाषित नियमों की अक्सर परस्पर विरोधी प्ररोचनाओं के संघात के द्वारा निर्धारित हुआ करता है।

आज के भूमण्डलीकृत विश्व में उपभोक्तावादी एवम् प्रौद्योगिकी से संचालित समाज में विवेक का शासन शिथिल हो गया है। व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों की तुष्टि के साथ समझौता करने को प्रस्तुत नहीं है। सफलता हासिल करने के लिए सब कुछ अपनाया जाता है। विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी की अभावनीय प्रगति ने मनुष्य को शक्तिशाली बनाया है और वह अपनी सीमाओं से बेखबर हो गया है। उसकी इच्छा का बहाव अपरिमित हो गया है, जिसमें सारे मूल्य-बोध विगलित होकर बहे जा रहे हैं। समाज ने विवेक के स्थान पर सीसीटीवी जैसे पहरेदार बहाल कर रखे हैं। विवेक का नियन्त्रण शिथिल होता जाए तो अपराध एवम् आत्मतुष्टि की प्रवृत्तियों को सुविधा हो ही जाती है। ऐसी स्थिति में आचार संहिता को लागू करने का जिम्मा प्रशासन और कानून व्यवस्था पर पड़ जाता है।

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-12 (इंटरनेट संस्करण : 75)
फरवरी 2013

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
गूगल से साभार

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>>4
बहनों की याद

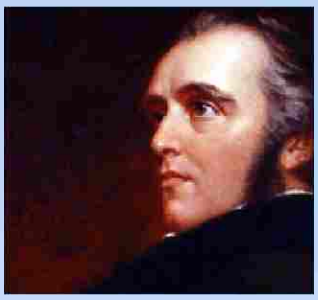

>>6
मैकाले और हमारे भ्रम

>>13
महाकवि से मुखातिब होना

>>15
प्रश्न क्या है?

इस अंक में

स्मरण : ध्रुव शुक्ल 4

मन की बात : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री 6

डॉ. परितोष मालवीय 10

संस्मरण : प्राण शर्मा 13

रम्य-रचना : वेद मित्र, एम.बी.ई. 15

सामयिक : विनय मोघे 17

बातचीत : आत्माराम शर्मा 18

नजरिया : राजकिशोर 23

व्याख्या : मनोज कुमार श्रीवास्तव 25

चिन्तन : बृजेन्द्र श्रीवास्तव 30

वेद की कविता : प्रभुदयाल मिश्र 33

मंथन : भूपेन्द्र कुमार दवे 34

प्रश्नोत्तरी : डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता 37

पंचतंत्र : 38

महाभारत : 41

अनुवाद : इंदु मदान 43

जगदीश महंती 46

कविता : डॉ. शिव गौतम 47

डॉ. देवेन्द्र मोहन मिश्रा 48

रामनारायण सिरोठिया 49

हरकीरत हीर 50

ग़ज़ल : आयुष 'चिराग' 51

शायरी की बात : नीरज गोस्वामी 52

कहानी : अनिल प्रभा कुमार 53

खबर : 61

आपकी बात : 62

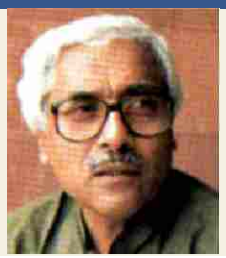

ध्रुव शुक्ल

११ मार्च १९५३ को सागर में जन्म. कवि-कथाकार के तौर पर पहचाने जाते हैं. 'उसी शहर में' और 'अमर टॉकीज' दो उपन्यास, 'खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं', 'फिर वह कविता वही कहानी', 'एक बूँद का बादल', 'हम ही हममें खेलें' चार कविता संग्रह, 'हिचकी' कहानी संग्रह. राष्ट्रपति द्वारा कथा एवार्ड और कला परिषद् के रज़ा पुरस्कार से सम्मानित. सम्प्रति - मध्यप्रदेश के जनसम्पर्क विभाग में संयुक्त संचालक.

सम्पर्क : एम.आई.जी.-५४, कान्हा कुँज, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) ईमेल - kavi.dhruva@gmail.com

स्मरण

बहनों की याद

वे अब भी विष-अमृत का खेल, खेल रही हैं। नजर बाग की अमराई में अपना अड्डा जमाए आमों की डालों पर झूल रही हैं। अक्षय तृतीया के गुड्डे-गुड़िया लिए बरगद की छाया में खुद अपना ब्याह रचा रही हैं। अमर वर की कामना कर रही हैं। वे बीच सड़क पर लंगड़ी थप्प खेल रही हैं। बहनों की याद हमेशा बचपन में ले आती है।

बहनें पराए घर की अमानत की तरह हमारे घर आती हैं। उनके सयाने होने का पता ही नहीं चलता और हम उन्हें घर से निकालने की तैयारी करने लगते हैं। जब वे घर से निकाली जाती हैं तो उल्टे बाजे बजते हैं, जैसे वे हमारे लिए मर गई हों। वे हमारा वंश बढ़ाने के लिए दुनिया में आती हैं, फिर चली जाती हैं।

वे सड़कों पर बदहवास भाग रही हैं। गुंडों से बच कर किसी तरह घर लौट रही हैं। पिता से भी डर रही हैं। शरीर से खेलती दुनिया की भयानक खबरें उन्हें नींद में चौंकाती हैं। घर से बाहर निकलते हुए उनके चेहरे पर खुशी नहीं होती। वे रोज डरी, सहमी-सी बाहर पांव रखती हैं और थकी-हारी-सी लौटती है।

> *बहनें अपनी जड़ें कभी नहीं छोड़तीं। वे हर बार एक पत्ती की तरह मुरझाती हैं तो फिर एक और हरी पत्ती की तरह पीक उठती हैं। हम उन्हें अक्सर नहीं बचाते, पर वे हर बार हमारे लिए बच जाती हैं।*

दफ्तरों में वे रोज हजारों शब्द टाइप करती हैं और दिन भर उनके होठों पर शब्द सूखते रहते हैं। वे कभी कुछ नहीं कहतीं। उनके चेहरे से यह भाव हमेशा झलकता रहता है कि वे अपने लिए कोई न्याय कभी नहीं कर पाएंगी। उनके फैसले हमेशा किसी और अदालत में होते रहेंगे। वे हमेशा दुख को पीती रहती हैं। सुबुकती हैं और खूब सहती हैं। कभी कहतीं कुछ नहीं।

देश में आजादी आई है और बहनें स्वतंत्र नहीं हुईं। वे अपनी पीठ पर न जाने किस-किसकी गृहस्थी का बोझ लादे टूट रही हैं। वे पिटती हैं, हरी जाती हैं, मंडियों में बेची जाती हैं। उन्हें गांवों में निर्वस्त्र घुमाया जाता है। पर वे खुद कुछ नहीं बोल पातीं। जो उन्हें बांध लेता है, उसी से बंध जाती हैं। घरों से, चौराहों पर अक्सर उनकी चीख सुनाई देती है। वे कभी पुकारती हैं, पर उनकी कोई नहीं सुनता। सब उनकी बोली लगाते हैं, कोई उन्हें बोलने नहीं देता।

हम अपने घर से दूर न जाने कहां-कहां उन्हें बांध आते हैं। पर फिर भी उनकी आंखों में हमारे लिए करुणा झलकती रहती है। हम जब भी उनके द्वार पर पहुंचते हैं, वे भरी हुई आंखों से हमें निहारती हैं। उनके चेहरे पर बार-बार दुख झलक आता है और उसे वे अपने आंचल से जल्दी ही पोंछ डालती हैं। जब हम लौट आते हैं तो अकेले में अपने दुख को बहाती रहती हैं। रास्ते में हमें खारे पानी के कुएं मिलते हैं तो लगता है कि उनके स्रोत बहनों की आंखों में होंगे!

वे बंधी हुई हैं, शायद इसीलिए सभी को बांधे रहती हैं। हम तो हाथ पीले करके उन्हें घर से बाहर छोड़ आते हैं। पर

> *वे अपनी पीठ पर न जाने किस-किसकी गृहस्थी का बोझ लादे टूट रही हैं। वे पिटती हैं, हरी जाती हैं, मंडियों में बेची जाती हैं। उन्हें गांवों में निर्वस्त्र घुमाया जाता है। पर वे खुद कुछ नहीं बोल पातीं। जो उन्हें बांध लेता है, उसी से बंध जाती हैं। घरों से, चौराहों पर अक्सर उनकी चीख सुनाई देती है। वे कभी पुकारती हैं, पर उनकी कोई नहीं सुनता। सब उनकी बोली लगाते हैं, कोई उन्हें बोलने नहीं देता।*

वे हर साल एक पीला धागा लेकर द्वार पर दस्तक देती हैं। उसे हमारी कलाई पर बांधते हुए न जाने कितनी उम्मीदों से भर जाती हैं। वे अपनी असहायता को प्रेम की पुलक से छिपाती हैं और जब अपनी उमर लग जाने की दुआ देती हैं तो लगता है कि क्या वे अब और जीना नहीं चाहतीं। लेकिन जो अपनी उमर बांटता है वही तो सबसे अधिक जीता है। उन्हें यह डर हमेशा रहता है कि हम कहीं उन्हें भूल न जाएं।

वे हमारे घरों में आंगन की आई चिड़ियों-सी चहचहाती हैं और कुछ दाना चुग कर फिर जैसे किसी दूर देश को चली जाती हैं। वे अपने कुछ झरे हुए पंख छोड़ जाती हैं। कभी वे हमारी लंबी यात्राओं के बीच अपने बच्चे लिए बस स्टैंड या स्टेशन पर मिल जाती हैं। वे वहां भी हमसे कुछ कहना चाहती हैं। पर जल्दी उनकी बस आ जाती है और दूर तक खिड़की से उनका हिलता हुआ हाथ हम देखते रह जाते हैं, जैसे हाथ

हिला कर कह रही हों कि हमें कुछ नहीं कहना था।

ऐसे ही चुपचाप-सा उनका जीवन बीत जाता है। वे बूढ़ी हो जाती हैं। उनके बच्चों के ब्याह के न्योते आते हैं। वंश वृक्ष में उग आई एक और नई पत्ती की सूचना की तरह। बहनें अपनी जड़ें कभी नहीं छोड़तीं। वे हर बार एक पत्ती की तरह मुरझाती हैं तो फिर एक और हरी पत्ती की तरह पीक उठती हैं। हम उन्हें अक्सर नहीं बचाते, पर वे हर बार हमारे लिए बच जाती हैं।

कवि-मित्र असद जैदी की 'बहनें' कविता की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं :

मरती नहीं, पर वे बैठी रहती हैं शताब्दियों तक घरों में
बहनों को दबाती दुनिया गुजरती जाती है जीवन के
चरमराते पुल से
परिवारों के चीखते भोंपू को
जैसे-तैसे दबातीं गर्दन झुकाए
अपने फफोलों को निहारतीं
एक दिन रास्ते में जब हमारी नाक से
खून निकलता होगा मिट्टी में जाता हुआ
पृथ्वी की सलवटों में खोई बहनों के खारे शरीर जागेंगे
श्रम के कीचड़ से लिथड़े अपने आंचलों से
हमें घेरने आएंगी बहनें
बचा लेना चाहेंगी हमें अपने रूखे हाथों से। ■

डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
सदस्य, हिंदी सलाहकार समिति (राजस्व), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार
सम्पर्क : पी/१३८, एम.आई.जी., पल्लवपुरम-२, मेरठ २५०११०
ईमेल : agnihotriravindra@yahoo.com

मन की बात

मैकाले और हमारे भ्रम

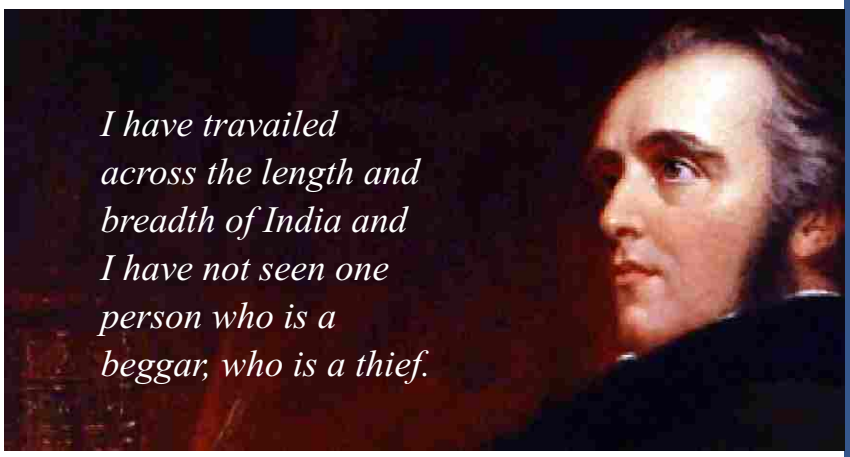

लार्ड मैकाले की आत्मा अगर कहीं से देख पाती होगी तो यह देखकर अवश्य ही संतोष का अनुभव करती होगी कि उसे उसके अपने देश ने भले ही भुला दिया हो, कोई वहां उसका नाम भी न लेता हो, पर इंडिया नाम की जिस असभ्य, गंवार, 'जंगली कालोनी' को उसने सभ्य -सुसंस्कृत बनाने के लिए अपने देश की महान भाषा और महान संस्कृति का बिरवा रोपने का संकल्प लिया था, उसकी खेती आज यहाँ के गाँव-गाँव में लहलहा रही है. इस देश के लोग उपकार को हमेशा याद रखते हैं. इसीलिए यहाँ के लोगों ने न केवल मैकाले की बताई संस्कृति को अपनाया है, बल्कि इस संस्कृति से हमारा परिचय कराने के लिए मैकाले का उपकार मानते हुए उसे भी अपने सीने से लगा रखा है. लोगों ने यह मान लिया है कि मैकाले जैसे महापुरुष के कारण ही आज यह देश अज्ञान, अंध-विश्वास और निर्धनता के अँधेरे से निकलकर आधुनिक विश्व के सुशिक्षित, अंध-विश्वासों से दूर, ज्ञानी और संपन्न लोगों के बीच उठने-बैठने योग्य बना है. अतः समझदार लोग उसका मुक्तकंठ से प्रशस्तिगान करते हैं, पर कुछ ऐसे सिरफिरे लोग भी हैं जो इसी बात का रोना रोते रहते हैं कि उसने ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जो अंग्रेजी साम्राज्य (अब यह अंग्रेजी का साम्राज्य बन गया है) चलाने के लिए 'बाबू' तैयार करती है और पूरे दिल से अँगरेज़ बना देती है. पर कहावत है न कि जादू वह जो सिरपर चढ़कर बोले. सो ये लोग दिखाने को कितनी भी गालियाँ दे लें, कितना भी कोस लें, पर ये भी चलते उसी के बताए रास्ते पर हैं. दफ्तर हो या घर, खुद भी उसी अंग्रेजी के खोल में बैठकर सुरक्षित अनुभव करते हैं और इसीलिए अपने बच्चों को भी वही शिक्षा दिलाते हैं.

अब कुछ समय से लार्ड मैकाले की याद को अमर बनाए रखने का लोगों ने एक और उपाय भी खोज लिया है जिसका मुझे परिचय पहले एक मित्र ने अपनी मेल के माध्यम से और फिर कुछ लेखकों ने (अंतर-राष्ट्रीय पत्रिकाओं तक में) अपने लेखों के माध्यम से कराया. उन्होंने बताया कि २ फरवरी १८३५ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में भाषण देते हुए मैकाले ने कहा :

"I have travailed across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar, who is a thief. Such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such calibre, that I do not think we would ever conquer this country unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their self esteem, their native culture and they will become what we want them, a truly dominated nation."

इसे पढ़कर मन प्रसन्न हो गया. मैकाले के श्रीमुख से भारत की प्रशस्ति! यहाँ कोई चोर नहीं, कोई भिखारी नहीं, यहाँ के उच्च नैतिक मूल्य, यहाँ के प्रतिभावान लोग! एक बार फिर याद आया - जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले; पर तभी पता नहीं क्यों मैकाले के कुछ और वाक्य याद आ गए.

> मैकाले ने भारत में लिखे अपने 'मिनट' में भारत के लोगों को, भारत की भाषाओं को और भारत के साहित्य को यूरोप के लोगों, भाषाओं-साहित्य से न केवल कमतर बताया है, बल्कि इस सबकी कठोर निन्दात्मक स्वर में चर्चा की है.

मैकाले ने भारत में लिखे अपने 'मिनट' में भारत के लोगों को, भारत की भाषाओं को और भारत के साहित्य को यूरोप के लोगों, भाषाओं-साहित्य से न केवल कमतर बताया है, बल्कि इस सबकी कठोर निन्दात्मक स्वर में चर्चा की है. अतः इस नए उद्धरण में मेरी रुचि बढ़ गई. मैं पूरा भाषण पढ़ने के लिए अधीर हो गया. पर यह क्या? जिस ग्रन्थ के बारे में यह सुनता आया हूँ कि उसमें मैकाले के सारे भाषण संग्रहीत किए गए हैं, (The Miscellaneous Writings and Speeches of Lord Macaulay, 4 Volumes) उसमें २ फरवरी १८३५ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में दिया मैकाले का कोई भाषण मिला ही नहीं; और जब मैंने इस उद्धरण का स्रोत अपने मित्र से जानने का प्रयास किया तो वह भी नहीं बता पाया. जिन लेखकों ने इस उद्धरण का अपने लेखों में उल्लेख किया है उन्होंने भी वहां इसका स्रोत नहीं बताया है. अतः इस की प्रामाणिकता पर अन्य दृष्टियों से विचार करना मेरे लिए आवश्यक हो गया.

मैकाले (२५ अक्तूबर १८०० - २८ दिसंबर १८५९) से हमारा परिचय तब हुआ जब वह गवर्नर जनरल के विधि सदस्य (Law Member) के रूप में भारत आया. ब्रिटेन में १८३० में जब वह पहली बार मेंबर ऑफ़ पार्लियामेंट बना. तब उसे 'बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल' का भी सदस्य बनाया गया. यह बोर्ड ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों पर नियंत्रण रखने के लिए बनाया गया था. मैकाले इस बोर्ड में १८ महीने रहा. इसी दौरान उसने भारत के बारे में अध्ययन करने का प्रयास अवश्य किया और निश्चित रूप से यह अध्ययन अंग्रेजी में ही किया क्योंकि उसे वह विश्व की महान भाषा मानता था और उसके विशाल समृद्ध साहित्य पर उसे बहुत गर्व था. इस अंग्रेजी साहित्य की सम्पन्नता ने उसे वहां पहुंचाया जिसके लिए केवल एक ही शब्द है 'घृणा'. भारतीय साहित्य से घृणा, भारतीय भाषाओं से घृणा, भारतीय कलाओं से घृणा, भारतीय विज्ञानों से घृणा, भारतीय धर्म से घृणा, भारतीय दर्शन से घृणा, भारत के नैतिक आदर्शों से घृणा, भारतीय संस्कृति से घृणा, दूसरे शब्दों में भारत की हर चीज़ से घृणा. इसीलिए वह भारत तो कभी आना ही नहीं चाहता था, मगर एक मजबूरी उसे भारत ले आई. क्या थी वह मजबूरी?

वह अपने माता-पिता की सबसे बड़ी संतान था. उसकी दो बहनें थीं - मार्गरेट और हन्नाह. मैकाले ने स्वयं तो विवाह किया नहीं क्योंकि जिस लड़की से प्यार किया उससे बात बनी नहीं, पर उसकी दोनों बहनों के विवाह संपन्न परिवारों में हुए थे. मैकाले अपनी बहनों और उनके परिवार से बहुत प्यार करता था. अपने मन की बातें वह अपनी बहनों को ही बताता था. उन्हें बराबर पत्र लिखता रहता था. उसके भांजे सर जार्ज ट्रेवेलियन ने बाद में उन पत्रों के आधार पर ही "Life and Letters of Lord Macaulay " ग्रन्थ लिखा. जिस 'इंडिया' से वह घृणा करता था, वहां आने का निश्चय उसने क्यों कर लिया, इसका राज़ उसने अपनी बहन को बताया.

उसने अपनी बहन को लिखा कि मैं अभी प्रति मास दो सौ पौंड से अधिक नहीं कमा पा रहा हूँ जबकि जिस तरह का जीवन मैं जीना चाहता हूँ उसके लिए कम से कम पांच सौ पौंड तो चाहिए ही. गरीबी के इस आलम में उसके लिए कोढ़ में खाज वाली बात यह हुई कि जिस व्हिग पार्टी से वह संसद में आया था, वह आतंरिक झगड़ों के कारण विखंडित होने लगी. इसलिए उसे इंग्लैण्ड में अपना भविष्य आर्थिक दृष्टि से भी अंधकारमय दिखाई देने लगा. "My political outlook is very gloomy. A schism in the Ministry is approaching. In England I see nothing before me, for some time to come, but poverty, unpopularity, and the breaking of old connections."

तभी एक ऐसी घटना घटी जिससे सारा परिदृश्य बदल गया. ब्रिटिश पार्लियामेंट ने जो नया इंडिया बिल बनाया, उसमें सुप्रीम काउन्सिल ऑफ़ इंडिया में "Law Member" का एक नया पद बनाया गया जिस पर ऐसे ही व्यक्ति की नियुक्ति की जानी थी जो न तो ईस्ट इंडिया कंपनी का कर्मचारी हो न उससे संबंधित हो. उस ज़माने में इंग्लैंड के सरकारी क्षेत्र में ऐसे लोगों का मिलना कठिन था जो ईस्ट इंडिया कंपनी से संबंधित न हों (दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जो लूट-मार में शामिल न हों). मैकाले के पिता तो इसमें शामिल थे, पर स्वयं मैकाले इससे दूर था. अतः इस पद का प्रस्ताव उसे दिया गया. इस पद के लाभ बताते हुए उसने अपनी बहन को लिखा कि इससे मुझे इज्जत तो मिलेगी ही, उससे भी अधिक पैसा मिलेगा - पूरे दस हज़ार पौंड प्रति वर्ष. मैंने सारी बात पता कर ली है. कलकत्ता में पांच हज़ार पौंड में बड़ी शान से रहा जा सकता है, इसलिए बाकी सारा पैसा बचेगा. उस पर ब्याज मिलेगा. मैं जब ३९ वर्ष की जवान उम्र में ही वापस आऊँगा तो मेरे पास तीस हज़ार पौंड होंगे. मैं सारी ज़िंदगी ऐसी शान से रहूँगा जैसे कोई राजकुमार रहता है; और मजेदार बात यह कि इंडिया में मुझे कोई मेहनत का काम भी नहीं करना है. आराम से बैठे-बैठे शाही काम करने हैं. ऊपर से उस देश में जितनी भी सुविधाएं मिल

सकती हैं, वे सब भी मुझे मिलेंगी. बस यह लालच मैकाले को उस इंडिया में ले आया जो अन्यथा उसे बिलकुल पसंद नहीं था.

नया पद ग्रहण करने के लिए उसे पार्लियामेंट की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ा. भारत आने पर उसे 'कमेटी ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन' का भी अध्यक्ष बनाया गया. इस कमेटी को यह तय करना था कि जो रुपया शिक्षा पर खर्च करने का आदेश ब्रिटेन की संसद ने कंपनी को दिया है, वह किस प्रकार की शिक्षा देने पर खर्च किया जाए. इस कमेटी में दस सदस्य थे जो संस्कृत/अरबी/फारसी की शिक्षा या अंग्रेजी की शिक्षा के विवाद की दृष्टि से ५-५ सदस्यों के दो वर्गों में बंट गए थे. मैकाले ने इसी विवाद को सुलझाने के लिए अपना 'मिनट' २ फरवरी १८३५ को गवर्नर जनरल को पेश किया और गवर्नर जनरल विलियम बेंटिंक द्वारा इसे स्वीकार कर लेने पर शिक्षा जगत में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आए - जैसे, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी, अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देने वाले शिक्षक तैयार करने के लिए 'टीचर्स ट्रेनिंग' की नई परम्परा शुरू हुई, शिक्षा का अर्थ हो गया अंग्रेजी बोलना, अंग्रेजी के अखबार पढ़ना, यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान का ही प्रशस्तिगान करना. और अगर कभी भूले -भटके भारतीय साहित्य पढ़ने की इच्छा मन में आ जाए तो वह भी अंग्रेजी में पढ़ना, आदि.

अब चर्चित उद्धरण पर ध्यान दीजिए. इसके अनुसार मैकाले ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा करने के बाद २ फरवरी १८३५ को यह भाषण दिया. गवर्नर जनरल की सुप्रीम काउन्सिल का विधि सदस्य बनने से पहले उसने भारत की कोई यात्रा की हो, ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता. उपलब्ध रिकार्ड के अनुसार वह केवल एक बार भारत आया, १० जून १८३४ को मद्रास (वर्तमान चेन्नई) के तट पर उतरा. उस समय देश की राजधानी कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) थी. अतः स्थल मार्ग से वहां चला गया. आया तो था पांच वर्ष के लिए, पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण निर्धारित समय से पहले ही दिसंबर १८३७ के अंत में इंग्लैण्ड वापस चला गया.

तो यह कैसे संभव है कि मैकाले २ फरवरी १८३५ को भारत में अपना मिनट भी पेश करे और उसी दिन ब्रिटिश पार्लियामेंट में भाषण भी दे जिसका वह अब सदस्य नहीं था? तब वीडियो कान्फरेंसिंग की सुविधा तो दूर, न टेलीफोन की सुविधा थी न तार की और न हवाई यात्रा की. पानी के जहाज़ से इंग्लैण्ड तक की यात्रा में तीन महीने लगते थे!

आइए, अब उस उद्धरण की विषयवस्तु पर विचार करें. मैकाले मद्रास से कलकत्ता गया, इसे अगर भारत का विस्तृत भ्रमण मानें तो दूसरी बात है, वरना उसके भारत-भ्रमण का कोई अधिकृत विवरण उपलब्ध नहीं. भारतीयों और इंग्लैण्ड के लोगों के नैतिक गुणों के सम्बन्ध में मैकाले के विचार १० जुलाई १८३३ को हाउस ऑफ़ कामंस में दिए भाषण में भी देखे जा सकते हैं. उसने कहा था कि इंग्लैण्ड का तो सामान्य व्यक्ति भी बहुत अधिक बुद्धिमान और सद्गुणी व्यक्ति है, the average intelligence and virtue is very high in this country (i.e. England) जबकि भारत के लोग असभ्य, जंगली, गंवार, लोभी, दगाबाज़ और अन्धविश्वासी हैं. people sunk in the lowest depths of slavery and superstition क्या इन्हीं को "high moral values" कहते हैं? मैकाले ने तो भारतीयों को सभ्य बनाने के लिए अंग्रेजी की शिक्षा देना, यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान सिखाना, नैतिकता में अँगरेज़ बनाना इंग्लैण्ड का परम दायित्व बताया था और इसी आधार पर उसने इंग्लैण्ड के लिए स्व-शासन की तथा भारत के लिए तानाशाही शासन की वकालत की. "What is the best mode of securing good governance in Europe ? The merest smatterer in politics would answer, representative institutions. In India you cannot have representative institutions. But she may have the next best thing -- a firm and impartial despotism."

उद्धरण के अनुसार देश में कोई चोर-भिखारी नहीं था. जहाँ तक चोर की बात है, ज्ञात इतिहास में कोई युग ऐसा नहीं है जब चोर न रहे हों. हाँ, उनकी संख्या कम-अधिक अवश्य मिलेगी. महर्षि पतंजलि (ईसा से अनेकानेक शताब्दियों पूर्व) के अष्टांग योग में पांच यम बताए गए हैं जिनमें एक है - अस्तेय जिसका अर्थ है 'चोरी का त्याग'. अगर चोर न होते तो चोरी के त्याग की बात कहाँ से आती? जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी (ईसा से लगभग पांच शताब्दी पूर्व) ने भी अस्तेय की चर्चा की है. मनुस्मृति (रचनाकाल अनिश्चित, पर सबसे प्राचीन स्मृति) में उस राजा को अतीव श्रेष्ठ बताया है जिसके राज्य में चोर न हो (यस्य स्तेनः पुरे नास्ति) ईसा की प्रथम शताब्दी की संस्कृत में एक रचना है - महाराज शूद्रक की लिखी मृच्छकटिक जिसमें चोर भी है और उसके चौर्य कर्म की विवेचना भी. पंडितों की मानें तो भी १९वीं शताब्दी में सतयुग या त्रेतायुग नहीं, घोर कलियुग ही था. कलियुग में चोरों का अकाल थोड़ी है! रही बात भिखारी की. यह न भूलें कि मैकाले तो १८३४ में आया, ईस्ट इंडिया कंपनी लूटमार करने और इस देश को भिखारी बनाने सन् १६०० में आ गई थी. जब यह कंपनी आई थी,

> यह कैसे संभव है कि मैकाले २ फरवरी १८३५ को भारत में अपना मिनट भी पेश करे और उसी दिन ब्रिटिश पार्लियामेंट में भाषण भी दे जिसका वह अब सदस्य नहीं था?

> जिस युग में थोड़े से विदेशी पूरे देश को अपना गुलाम बना लें, देशवासियों पर तरह-तरह के अत्याचार करें, उनकी जीविका के साधन तक नष्ट कर दें और देशवासी इस सबके बावजूद उनकी जी-हुजूरी करना अपना सौभाग्य मानें, क्या वह उस देश का स्वर्ण युग हो सकता है?

उस समय की आर्थिक स्थिति का फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने इन शब्दों में वर्णन किया है :

'यह हिन्दुस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता.'

यही देखकर तो ईस्ट इंडिया कंपनी यहाँ आई थी; पर लगभग सवा सौ वर्ष बाद मैकाले के समय का भारत ऐसा नहीं था. कंपनी ने यहाँ का सोना-चांदी बाहर ले जाने के अनेक रास्ते बना ही नहीं लिए थे, वह सारा सोना चांदी ले जा चुकी थी और अब तो अपना कारोबार समेट रही थी. वह सब विस्तार से जानने की इच्छा हो तो रोमेश चन्द्र दत्त आई सी एस की 'भारत का आर्थिक इतिहास' (दो खंड), सखाराम गणेश देउस्कर की 'देश की बात', सुरेन्द्र नाथ गुप्त की 'सोने की चिड़िया और लुटेरे अँगरेज़', सुन्दरलाल की 'भारत में अंग्रेजी राज' (दो खंड) जैसी कोई पुस्तक पढ़ जाइए.

इस ओर भी ध्यान दीजिए कि कंपनी की नीतियों के कारण एक ओर तो उद्योग धंधे चौपट होते जा रहे थे और दूसरी ओर देश बार-बार अकाल की चपेट में आ रहा था. सन १७६९ से लेकर १७७३ तक बंगाल में ऐसे अकाल पड़ चुके थे जिनमें एक करोड़ से अधिक लोग भूख से मर गए थे. सन १८०० से लेकर १८२५ के दौरान पांच बार अकाल पड़ चुके थे. अकालों के कारण ईस्ट इंडिया कंपनी का राजस्व घट गया तो इंग्लैण्ड में उसके शेयर लुढ़कने लगे. इस संकट से अपने को उबारने के लिए कंपनी सरकार ने किसानों से ली जाने वाली मालगुजारी को १० प्र.श. से बढ़ाते-बढ़ाते ५० प्र.श. तो कर ही दिया था, इसमें १० प्र.श. की वृद्धि और की जा रही थी. इस सबके परिणामस्वरूप अब जो स्थिति थी वह विलियम डिग्बी ने बताई है :

'करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं जिन्हें किसी भी समय भरपेट अन्न नहीं मिल पाता.' (बर्नियर और डिग्बी दोनों उद्धरणों के लिए देखें : सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज ; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार ; चतुर्थ मुद्रण १९८२; प्रथम पृष्ठ). क्या ऐसे समय में यह कल्पना की जा सकती है कि देश में कोई भिखारी नहीं था? उत्तम खेती, मध्यम बान, निखिद चाकरी, भीख निदान - यह कहावत क्या १८३५ के बाद बनी?

इससे आप यह न समझें कि मैकाले ने वह सब नहीं किया जिसकी चर्चा उद्धरण के उत्तरार्ध में की गई है. उसने यही काम किया. उसके जीवनी लेखक ट्रेवेलियन ने भी लिखा है कि १८३५ में एक नए भारत का जन्म हुआ. उसकी प्राचीन सभ्यता की आधारशिलाएँ हिलने लगीं, उसके प्रासाद के स्तम्भ एक-एक करके ढहने लगे, "A new India was born in 1835. The very foundations of her ancient civilization began to rock and sway. Pillar after pillar in the edifice came crashing down."

पर यह काम मैकाले ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा करके नहीं, 'सरकारी तर्क' देकर किया. आप जानते ही हैं, सरकार चाहे तब की हो या अब की, वह अपने कामों को 'जनता के हित में' ही बताती है और उसके लिए अपने ढंग से तर्क भी जुटा लेती है. मैकाले ने भी यही किया. उसने पहले तो यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान को श्रेष्ठ बताया, intrinsic superiority of the Western literature, और फिर भारतीय साहित्य से तुलना करते हुए कहा कि a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia. इतना ही नहीं, उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि अंग्रेजी के महत्व को 'समझदार भारतीय' समझने लगे हैं, तभी तो जहाँ अरबी/फारसी/संस्कृत की शिक्षा पाने के लिए लोग छात्रवृत्ति चाहते हैं, वहां अंग्रेजी पढ़ने के इच्छुक लोग स्वेच्छा से मोटी फीस देने को तैयार हैं those who learn English are willing to pay us उसने यह देखने की कोशिश नहीं की कि छात्रवृत्ति लेकर पढ़ने वाले और स्वेच्छया फीस देने वाले किन वर्गों के लोग हैं.

इन तथ्यों के आलोक में विचार कीजिए कि संदर्भित उद्धरण क्या मैकाले का हो सकता है? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अपने शब्द उसके मुंह में रखना चाह रहे हैं? पर इसकी आवश्यकता क्या है? मैकाले न तो भारत-मित्र था न भारत-विद्. यह बात अब जग जाहिर है कि उसने अंग्रेजी साम्राज्य की नींव मज़बूत करने के ही प्रयास किए. रही बात देश की तत्कालीन स्थिति की, तो ज़रा सोचिए कि जिस युग में थोड़े से विदेशी पूरे देश को अपना गुलाम बना लें, देशवासियों पर तरह-तरह के अत्याचार करें, उनकी जीविका के साधन तक नष्ट कर दें, और देशवासी इस सबके बावजूद उनकी जी-हुजूरी करना अपना सौभाग्य मानें, क्या वह उस देश का स्वर्ण युग हो सकता है? सुदूर अतीत के जिस भारत की छवि आपकी आँखों में बसी हुई है, उसकी सराहना करने वाले देशी-विदेशी विद्वानों की कोई कमी नहीं. उनके उद्धरण दीजिए और गर्व का अनुभव कीजिए.■

डॉ. परितोष मालवीय

१८ दिसम्बर १९७५ को जन्म. एम. ए. (हिंदी, अंग्रेजी) एवं पीएच. डी. (हिंदी). विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा लेख, कहानियाँ प्रकाशित. 'विष विज्ञान एवं मानव जीवन' पुस्तक का लेखन. सम्प्रति : डी.आर.डी.ओ., भारत सरकार की ग्वालियर स्थित प्रयोगशाला में वरिष्ठ हिंदी अनुवादक.

सम्पर्क : ३९/३ डिफेंस कॉलोनी, गांधीनगर, ग्वालियर, म.प्र. ४७४००२. ईमेल - malviyaparitosh@rediffmail.com

मन की बात

हिन्दी भाषा का बदलता स्वरूप और अस्तित्व का संकट

भाषा का प्रवाह एक ऐसी नदी की तरह होता है जो हमेशा अविरल बहती रहती है। भाषा का स्वरूप निरंतर बदलता रहता है और यह सभी भाषाओं के बारे में कहा जा सकता है। हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि वर्तमान हिंदी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है और काल के अनुसार यह पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का चोला बदलती हुयी वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुयी। यदि हम वर्तमान हिंदी के कुल विकास क्रम का परीक्षण करें तो पायेंगे कि यह लगभग ३५०० वर्ष पुरानी भाषा है और वैदिक संस्कृत से लेकर हिंदी के वर्तमान स्वरूप तक शनैः-शनै इसमें विकास या परिवर्तन होते रहे हैं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से घटित होती रही। यह भी उल्लेखनीय है कि व्याकरणबद्ध भाषा और लोक भाषा में शुरूआत से ही अंतर रहा है। पाणिनि द्वारा संस्कृत को व्याकरणबद्ध करने बाद लौकिक संस्कृत का जन्म हुआ एवं यही लौकिक संस्कृत ऋग्वेद के बाद के तीनों वेदों और उपनिषद की भाषा बनी। महाकवि कालिदास के नाटकों में भी अभिजात्य वर्ग के पात्र जहां संस्कृत भाषा में संवाद करते दिखाए गए हैं वहीं जनसामान्य एवं निचली जातियों के पात्र पालि एवं प्राकृत में संवाद करते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि भाषा अपने उद्भव काल से ही निरंतर परिवर्तनशील रही है।

अपने विकास क्रम के साथ हिंदी भाषा ने अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी जैसी अन्य भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात किया तथा समृद्ध हुयी। इन भाषाओं के कुछ शब्द तो इस तरह हिंदी भाषा में समाहित होकर जन-जन की बोली में आ गए हैं कि इनका विशुद्ध हिंदी पर्याय ढूढ़ना या तो असंभव प्रतीत होता है या हास्यास्पद। ऐसे ही कुछ शब्द गौर करने लायक हैं :

अरबी : आदत, अक्ल, आशिक, दुनिया, कसम, सब्र, जन्नत, मुसाफिर, मुसीबत, जिस्म, इंसान, हवा, किताब, सवाल, ग़लत इत्यादि।

फारसी : सब्ज़ी, पनीर, हमेशा, अंदर, खाली, गंदा, गरम मसाला, बेईमान, ईमानदार, बीमार, नया, देहाती, खुशबू, बदबू, माफ इत्यादि।

पुर्तगाली : बनाना, मानसून, पोटाटो (बटाटा), टंकी, मंत्री, तौलिया, काजू इत्यादि।

तुर्की : अदालत, अनानास, औरत, बारूद, चाय, दोस्त, गुनाह, कोफ्ता, नफरत, पहलवान इत्यादि।

अंग्रेजी : डॉक्टर, कंप्यूटर, स्कूल, पेट्रोल, गैस, प्लास्टिक, फुटबॉल, बिस्कुट, टॉर्च, पंचर, पोस्ट, ट्रेन, प्लेटफ़ॉर्म, बॉक्स इत्यादि।

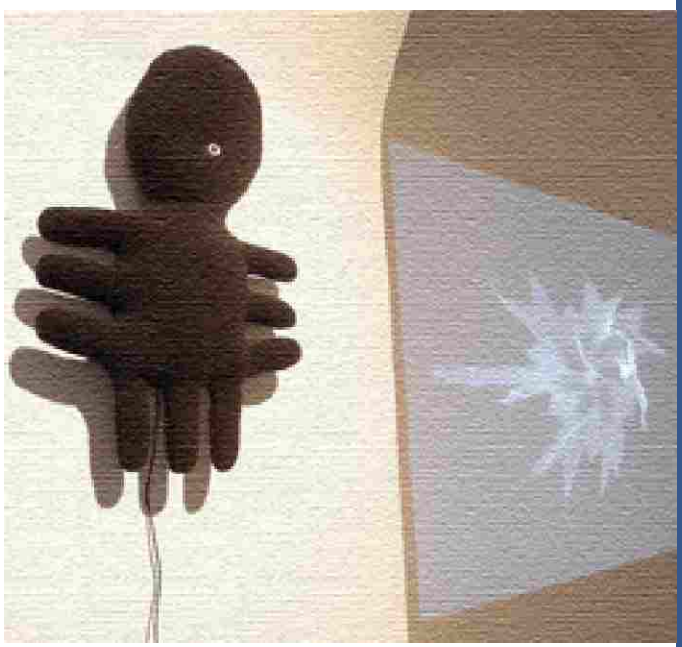

> भारत के महानगरों में एक ऐसी भाषा जन्म ले चुकी है जो न हिंदी है और न ही अंगरेजी। इसे 'मेट्रो हिंदी' ही कहा जा सकता है और इसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आर्थिक उदारीकरण के दौर के बाद से अंग्रेजी शब्दों को जानबूझकर प्रयोग करने की बाढ़-सी आ गयी है जिसके फलस्वरूप आधुनिक हिंदी अपना अस्तित्व ही खोती जा रही है। कई बार यह कहना कठिन होता है कि यह हिंदी है, हिंग्लिश है या कोई और भाषा।

यह सूची बहुत लंबी है। भाषाविदों ने ऐसे हजारों शब्द चिह्नित किए हैं जो विदेशी मूल के हैं परंतु हिंदी में घुल-मिल गए। अब तो हालत यह भी हो गयी है कि अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के शब्द भी अपभ्रंश होकर व्यवहार में आ गए हैं जैसे रिपोर्टको 'रपट' कहा जाने लगा है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि किसी भाषा द्वारा अन्य भाषाओं के शब्दों को समाहित करने की प्रक्रिया स्वतंत्र व प्राकृतिक होनी चाहिए अधिरोपित नहीं, जैसा कि आजकल हो रहा है। अन्य भाषाओं के शब्दों को प्राकृतिक रूप से समाहित करने से भाषा समृद्ध होती है जबकि जानबूझकर अन्य भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी, के शब्दों के प्रयोग से भाषा का स्वरूप बदलता व भ्रष्ट होता है। जनमानस द्वारा प्राकृतिक रूप से अन्य भाषाओं के उन्हीं शब्दों को समाहित किया जाता है जिनके हिंदी पर्याय या तो सटीक नहीं होते या उच्चारण में कठिन होते हैं, जैसे डॉक्टर, कंप्यूटर आदि।

लेकिन यह खेद का विषय है कि विगत कुछ वर्षों, विशेषकर आर्थिक उदारीकरण के दौर के बाद से अंग्रेजी शब्दों को जानबूझकर प्रयोग करने की बाढ़-सी आ गयी है जिसके फलस्वरूप आधुनिक हिंदी अपना अस्तित्व ही खोती जा रही है। कई बार यह कहना कठिन होता है कि यह हिंदी है, हिंग्लिश है या कोई और भाषा। वर्तमान हिंदी के स्वरूप पर विचार करते हुए भाषाविद योगेन्द्र जोशी ने इसे 'मेट्रो हिंदी' का नाम दिया है।

भारत के महानगरों में एक ऐसी भाषा जन्म ले चुकी है जो न हिंदी है और न ही अंगरेजी। इसे 'मेट्रो हिंदी' ही कहा जा सकता है और इसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसका प्रभाव क्षेत्र इतना बढ़ चुका है कि भाषावेत्ताओं एवं शोधकर्ताओं द्वारा इसका अध्ययन व शोध किया जाना चाहिए। पारंपरिक हिंदी के वे शब्द, जिन्हें हिंदीभाषी सदियों से बोलचाल में प्रयोग में लेते आए हैं, मेट्रो हिंदी के कारण विलुप्त होते जा रहे हैं। इस मेट्रो हिंदी की कुछ विशेषतायें निम्नवत हैं -

- गिनती के शब्द - वन् (एक), टू (दो), थ्री (तीन),

- साप्ताहिक दिनों के नाम - मंडे (सोमवार), ट्यूज्डे (मंगलवार),

- रंगों के नाम - रेड (लाल), येलो (पीला), ब्लैक (काला),

- शरीर के अंग के नाम - किडनी, लीवर (वृक्क और यकृत अब कोई नहीं बोलता),

- पब्लिक स्कूलों और मध्यमवर्गीय परिवारों में माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को रटाए जा रहे शब्द जैसे - डॉगी (कुत्ता), टाइगर (बाघ), हॉर्स (घोड़ा), फिश् (मछली), काऊ (गाय) आदि,

- साग-सब्जी के नाम - बनाना (केला), ऐपल् (सेब), ऑरेंज (संतरा), टोमेटो (टमाटर),

पारिवारिक रिश्तों के नाम - अब लोग मम्मी/पापा से भी आगे बढ़कर मॉम/डैड/डैडी पर उतर चुके हैं। पत्नी या पति कहने के बजाए वाइफ/हजबैंड शब्द ज्यादा इस्तेमाल हो रहे हैं।

- अंग्रेजी के विशेषण/क्रिया विशेषण जैसे- ऑलरेडी (पहले ही), इन् फैक्ट (दरअसल), इक्जैक्टली (सही-सही),

- औपचारिक बातचीत के अनेक शब्द/ पदबंध - थैंक् यू (धन्यवाद), एक्सक्यूज मी (माफ करें), वेरी गुड (शाबास), कांग्रैच्युलेशन्स (बधाई), हैप्पी बर्थडे (जन्मदिन मुबारक)।

खास बात यह है कि इस अनूठी हिंदी में व्याकरणीय ढांचा मूलतः हिंदी का ही है, किंतु उस पर अंग्रेजी के व्याकरण का असर साफ नजर आ जाता है। व्याकरण संबंधी विकृति कई रूपों में दिखाई देती है जैसे- ऑफिसेज़ की जगह ऑफिसों, ट्रेन्स की जगह ट्रेनों का प्रयोग। यह एक ऐसी खिचड़ी है जिसमें दाल-चावल की जगह हिंदी और अंग्रेजी को मिला दिया गया है।

गनीमत यह है कि हिंदी के सर्वनामों को अभी छेड़ा नहीं गया है। किसी को ऐसा बोलते नहीं सुना गया है कि 'माई कॉलेज में कल स्थापना दिवस मनाया जाएगा।' अभी तक मेट्रो हिंदी का अस्तित्व सिर्फ बोलचाल की भाषा तक सीमित है, यह अभी लिखित पाठों में जगह नहीं पा सकी है। फिर भी ऐसा देखा गया है कुछ समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने जानबूझकर मेट्रो हिंदी का प्रयोग शुरू कर दिया है विशेषकर विज्ञापनों में ऐसी हिंदी का ही प्रयोग हो रहा है। जैसे - सिर्फ ३० दिन में इंग्लिश स्पीकिंग सीखें, यूथ ने किया वैलेंटाइन डे पर जमकर इंज्वाय, फिटनेस के लिए खाएँ ३० प्लस आदि।

मेट्रो हिंदी में अंग्रेजी के ऐसे तमाम शब्द शामिल रहते हैं

जिनका ज्ञान किसी सामान्य व्यक्ति को नहीं होता। मेट्रो हिंदी ऐसे कुंठाग्रस्त गुलाम मस्तिष्क की उपज है जो अंग्रेजी मोह के बीज से जन्मी है। वास्तव में यह उन लोगों की भाषा है जिनका अंग्रेजी ज्ञान हिंदी की तुलना में अधिक होता है। अपनी हिंदी को अधिक समृद्ध करने का विचार ऐसे लोगों के मन में कभी नहीं आता। अंग्रेजी आधारित शिक्षा एवं व्यावसायिक कारणों से वह अंग्रेजी के निरंतर अभ्यास का आदी होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि भले ही वह शुद्ध और धाराप्रवाह अंग्रेजी न बोल पाता हो, परंतु टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने से परहेज नहीं करता। ये वही लोग हैं जो हिंदी पर कृत्रिम, कठिन व अनुवाद की भाषा होने के आरोप लगाते हुए हिंदी के सरलीकरण की पैरोकारी करते हैं। जबकि अंग्रेजी के सरलीकरण की बात कोई नहीं करता। इसके विपरीत बोलचाल में अंग्रेजी के कठिन शब्दों और मुहावरों के प्रयोग को प्रतिष्ठा की वस्तु माना जाता है। इन लोगों द्वारा अपने बच्चों और छात्रों के मन में यह भावना बिठा दी जाती है कि कामचलाऊ हिंदी ही पर्याप्त है। हमारे देश में लगभग सभी व्यावसायिक कार्य अंगरेजी में ही संपन्न होते हैं। कार्यालयों में अंग्रेजी में ही काम करते-करते हाईस्कूल उत्तीर्ण कर्मचारी भी कुछ दिनों में कामचलाऊ अंग्रेजी सीख ही जाते हैं। वैज्ञानिक, चिकित्सक, अर्थशास्त्री, कानूनविद्, आदि भी इस वर्ग में आते हैं।

हिंदी भाषा और इसके व्याकरण में यह घुसपैठ किस स्तर पर पहुँच सकती है, यह अनुमान लगाना कठिन है। कहीं ऐसा न हो कि भविष्य में हम टी.वी. समाचारों में यह सुनें - इस अवसर पर पीएम ने कहा कि हम अपनी कंट्री के विकास के लिए डैव्लप्ड देशों से टैक्नोलॉजी इंपोर्ट करना चाहते हैं। सो वी वुड लाइक टु हैव मैत्रीपूर्ण संबंध विद विकसित कंट्रीज़।

अंत में सबसे अधिक अहम बात यह है कि इस भाषा का बोलने वाला यह कहने में जरा भी शर्म नहीं करता कि उसे सही हिंदी लिखना, पढ़ना और बोलना नहीं आता। इसके विपरीत उसे यह कहने में गौरव महसूस होता है कि 'मेरी हिंदी थोड़ी कमजोर है।' दुःखद तथ्य तो यह है कि हिंदी के प्रति ऐसा उपेक्षा भाव प्रायः उन लोगों में देखा जाता है जिनकी मातृभाषा हिंदी होती है। यदि हमें हिंदी भाषा के अस्तित्व को बनाये रखना है तो सबसे पहले सैकड़ों बोलियों जैसे बुंदेलखंडी, भोजपुरी, गढ़वाली, अवधी, मगधी आदि की रक्षा करनी होगी। ऐसी क्षेत्रीय बोलियां ही हिंदी की प्राणवायु हैं। भाषा के अस्तित्व का यह संकट उतना ही गहन है जितना धरती पर पारिस्थितिकी संकट। जिस तरह पारिस्थितिकी हमारे भौतिक अस्तित्व के लिए जरूरी है उसी तरह भाषा हमारे अंतर्मन और आत्मसम्मान के अस्तित्व के लिए जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि हमारा राष्ट्र ही गूँगा हो जाए। ■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

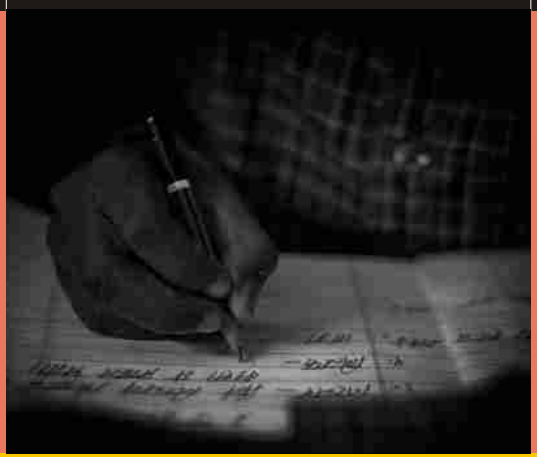

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

प्राण शर्मा

१३ जून, १९३७ को वजीराबाद (अब पाकिस्तान) में जन्म. पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए., बीएड. १९६५ से यू.के. में निवास और वहाँ के लोकप्रिय शायर और लेखक हैं. यू.के. से निकलने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका 'पुरवाई' में ग़ज़ल के विषय में महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं और यू.के. में पनपे नए शायरों को कलम माजने की कला सिखाई है. आपकी रचनाएँ पंजाब के दैनिक पत्र, 'वीर अर्जुन', नयाज्ञानोदय, भाषा एवं 'हिन्दी मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. देश-विदेश के कवि सम्मेलनों, मुशायरों तथा आकाशवाणी कार्यक्रमों में हिस्सेदारी की है तथा अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. प्रकाशित रचनाएँ : 'ग़ज़ल कहता हूं' (ग़ज़ल संग्रह), 'सुराही' (कविता संग्रह).

संपर्क : 3, Crackston Close, Coventry, CV2 5EB, U.K. Email : sharmapran4@gmail.com

संस्मरण

महाकवि से मुखातिब होना

पिता जी ने कहा - 'देखो बेटा, हिंदी रत्न की परीक्षा तो तूने अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कर ली है अब लगे हाथों प्रभाकर भी कर ले. ये ले सौ रुपये और नालंदा कॉलेज के प्रिंसिपल से पूछ कर सभी पुस्तकें खरीद ले. हिंदी की अच्छी शिक्षा पायेगा तो विद्वान् बनेगा. अपनी भाषा का ज्ञान अति आवश्यक है. पता है कि महात्मा गाँधी ने कभी कहा था 'भारत के वे लोग असली शत्रु हैं जो भारतीय होते हुए भी व्यवहारिकता में अँगरेज़ हैं.' उन लोगों की कृपा से आज समूचा भारतीय समाज अंग्रेज़ी की जंजीरों में जकड़ा नज़र आ रहा है. नगर-नगर में अब अंग्रेज़ी के स्कूलों की भरमार हो रही है. उनका जाल फ़ैल रहा है. सरकारी दफ्तरों और संस्थानों में अंग्रेज़ी का ही बोलबाला हो रहा है. ये सब रोकना होगा.

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं की अस्मिता पर घिर रहे संकट से आक्रांत अनेक निष्ठावान और कर्मठ विद्वान् लोग जूझ रहे हैं. बेटे, तुझे प्रभाकर और हिंदी में एम.ए. कर के ऐसे हिंदी के प्रतिबद्ध विद्वान् लोगों का अनुसरण करना है, उनके कन्धों से कन्धा मिला कर चलना है. अपनी बोली, अपनी भाषा माँ के समान होती है तभी तो वह मातृभाषा कहलाती है. तुझे व्यवहारिकता में भारतीय बनना है, ब्रिटिश नहीं. तेरी पहचान हिंदी भाषा से है. अगर उसको खो दिया तो समझ ले तूने सब कुछ खो दिया है. अँगरेज़ तो चले गये लेकिन अपनी ज़बान अंग्रेज़ी छोड़ गये हैं, अँगरेज़ परस्त लोगों के संरक्षण में.

पिता जी हिंदी, संस्कृत और अंग्रेज़ी के विद्वान् थे. आवश्यकता पड़ने पर ही वे अग्रेज़ी बोलते थे. पंजाबी थे. पंजाबी में तो बोलते ही थे लेकिन जब वे हिंदी बोलते थे तो लगता था कि जैसे कोई बनारसी पंडित बोल रहा था. उन्होंने कुछ इस अंदाज़ से उपदेश दिया कि उनके मुखारविंद से निकला हुआ एक-एक क्लिष्ट शब्द भी गुलाब की पंखुरी जैसा कोमल लगा. उनकी बातों से मैं इतना ज्यादा प्रभावित हुआ कि एक सौ रुपये मैंने अपनी जेब में डाले और दूसरे दिन सुबह सबसे पहला काम नालंदा कॉलेज में प्रवेश पाने का किया. प्रिंसिपल श्री राम लाल से प्रभाकर की पुस्तकों की

> *"अपनी भाषा माँ के समान होती है तभी तो वह मातृभाषा कहलाती है. तुझे व्यवहारिकता में भारतीय बनना है, ब्रिटिश नहीं. तेरी पहचान हिंदी भाषा से है. अगर उसको खो दिया तो समझ ले तूने सब कुछ खो दिया है."*

सूची ली और लाजपत राय मार्केट के पुस्तक-विक्रेता के पास पहुँच गया. सभी पुस्तकें खरीदने में देर नहीं लगी. थैला भर कर घर पहुँचा. पिता जी अति प्रसन्न हुए. उनकी आज्ञा का पालन मैंने किया था. घर में उत्सव जैसा वातावरण बन गया था. नयी दिल्ली का एक बहुत सुन्दर इलाका है - सुंदर नगर. उसकी मार्किट से रसगुल्ले मँगवाये गये. पिता जी को मधुमेह था लेकिन सबसे ज्यादा रसगुल्ले उन्होंने ही खाए.

प्रभाकर में प्रवेश पाने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मुझको छंदशास्त्र का ज्ञान हुआ और सही कविता से जान-पहचान हुई. मैंने अपने माता-पिता से भी बहुत सीखा. उन्हीं दिनों संयोग से नालंदा कॉलेज में कविवर उदय भानु हंस के दर्शन हुए. वह अतिथि अध्यापक के रूप में कुछ घंटों के लिए वहाँ आये थे. पता चला कि वह अच्छे कवि हैं. उनके नाम कई उम्दा ग़ज़लें व रुबाइयाँ हैं. उनको सामने पाकर बड़ा अच्छा लगा. उनके मुँह से यह रूबाई सुनकर सभी झूम उठी थे :

मैं साधू से आलाप भी कर लेता हूँ
मंदिर में कभी जाप भी कर लेता हूँ
मानव से कहीं देव न बन जाऊँ मैं
यह सोच के कुछ पाप भी कर लेता हूँ.

प्रभाकर में लगे काव्य-संकलन में अनेक हृदयस्पर्शी कवितायें थी. कुछ कविताओं से मैं बहुत प्रभावित हुआ. निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ मेरे मन-मस्तिष्क में अंकित हो गयीं -

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी / खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी.

- सुभद्रा कुमारी चौहान

वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता
पथ पर आता

- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

इस पार प्रिय तुम हो मधु है
उस पार न जाने क्या होगा

- हरिवंश राय बच्चन

मैं नीर भरी दुःख की बदली
उमड़ी कल थी मिट आज चली

- महादेवी वर्मा

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए

- बालकृष्ण शर्मा नवीन

मेरा मन उन कविताओं में रमा ही था कि एक दिन पिता जी, निराला जी की क्लिष्ट कविता 'राम की शक्ति पूजा' कहीं से ले आये, मेरा शब्द-सामर्थ्य बढ़ाने के लिए. कविता की

"मैं दूसरी पंक्ति के अर्थ समझता और उसकी पहली पंक्ति के शब्दों के अर्थ भूल जाता. चूँकि पिता जी को मेरा शब्द-सामर्थ्य बढ़ाना और मुझको विद्वान् बनाना था इसलिए वह डटे रहे. यह सिलसिला कई दिनों तक चला."

प्रारम्भिक पंक्तियाँ थीं : *आज की तीक्ष्ण शर विधृत क्षिप्र कर वेग प्रखर / शत शेल संवरण शील नील नभ गर्जित स्वर / प्रति पल परिवर्तित व्यूह भेद कौशल समूह / राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह क्रुद्ध कापी विषम हूह.*

उनको पढ़ कर ही मेरा अपरिपक्व मस्तिष्क चक्कर खाने लगा. सच तो यह है कि मेरे पसीने छूट गये थे. मैंने पिता जी से नम्रता से कहा कि अभी मैं इतना समर्थ नहीं हूँ कि ऐसे क्लिष्ट शब्दों को आत्मसात कर सकूँ. वह नहीं माने और जबरन मुझको अपने पास बिठा लेते और राम की शक्ति पूजा की पंक्तियों के क्लिष्ट शब्दों के अर्थ समझाने लगते. उनके बार-बार समझाने पर भी मेरी अल्प बुद्धि उन्हें पचा नहीं पाती. सच तो यह है कि मैं दूसरी पंक्ति के अर्थ समझता और उसकी पहली पंक्ति के शब्दों के अर्थ भूल जाता. चूँकि पिता जी को मेरा शब्द-सामर्थ्य बढ़ाना और मुझको विद्वान् बनाना था इसलिए वह डटे रहे. यह सिलसिला कई दिनों तक चला.

एक दिन मैं 'विद्धांग' शब्द का अर्थ भूल गया. उनके धैर्य का बाँध टूट गया. देखते ही देखते वह लाल-पीले हो गये. सिंहनाद कर उठे - 'तेरा ध्यान कहाँ रहता है?' उनके धमाकेदार तमाचे शुरू हो गये. कभी मेरी एक गाल पर और कभी दूसरी गाल पर. मेरी आँखों में आंसुओं की झड़ी लग गयी. अपने जवान पुत्र को केवल एक शब्द के लिए बुरी तरह पिटता देख कर मेरी माँ कराह उठी. छोटा भाई डर के मारे उसकी पीठ के पीछे लुक गया. पड़ोस वाली मेरी हमउम्र जो सरसों का साग और मक्की की रोटियाँ देने आयी थी उस कारुणिक दृश्य से सुबक उठी और अपनी गीली आँखों को दुपट्टे के कोने से छिपा कर अपने घर भाग गयी.

मैं उस पीड़ा को अपने मन में लिए कई दिनों तक तड़पता रहा और निराला जी को याद करता रहा. अपने सपनों में उनसे रोज़ ही मिला और मुखातिब हुआ - 'निराला जी, राम की शक्ति पूजा लिख कर आप तो क्लासिकल पोएट बन गये लेकिन उससे मेरी क्या दुर्गति हुई, मैं ही जानता हूँ!'■

वेद मित्र, एम.बी.ई.

५ अगस्त, १९३८, लुधियाना (पंजाब) में जन्म. अधिकांश समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न. १९८० से लंदन में हिन्दी पढ़ाते रहे हैं. इनके सैकड़ों विद्यार्थी ओ लेवल तथा ए लेवल हिन्दी परीक्षाओं में उच्च स्तर प्राप्त करते रहे हैं. प्रकाशित रचनाएं - समूची हिन्दी शिक्षा (४ भागों में) - १९९२. विदेशियों और भारतवंशियों को हिन्दी सिखाने का पूरा पाठ्यक्रम - पुस्तक के तीन संस्करण छप चुके हैं और ४० से भी अधिक देशों में हिन्दी शिक्षण के लिए प्रयोग की जा रही है. सम्मान - ब्रिटेन की महारानी ने २००७ में शिक्षा के क्षेत्र में दी गई सेवाओं के लिए विभूषित किया. २००८ में भारतीय उच्चायोग, लंदन ने जॉन गिलक्रिस्ट हिन्दी सम्मान प्रदान किया. सम्प्रति : किंग्स कॉलेज, लंदन में हिन्दी अध्यापन.

सम्पर्क : 356, Vale Road, Ash Vale, Surrey GU12 5LW email: vedmohla@yahoo.com

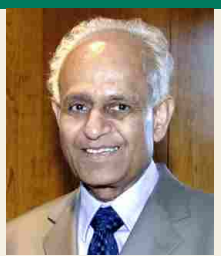

रम्य-रचना

प्रश्न क्या है?

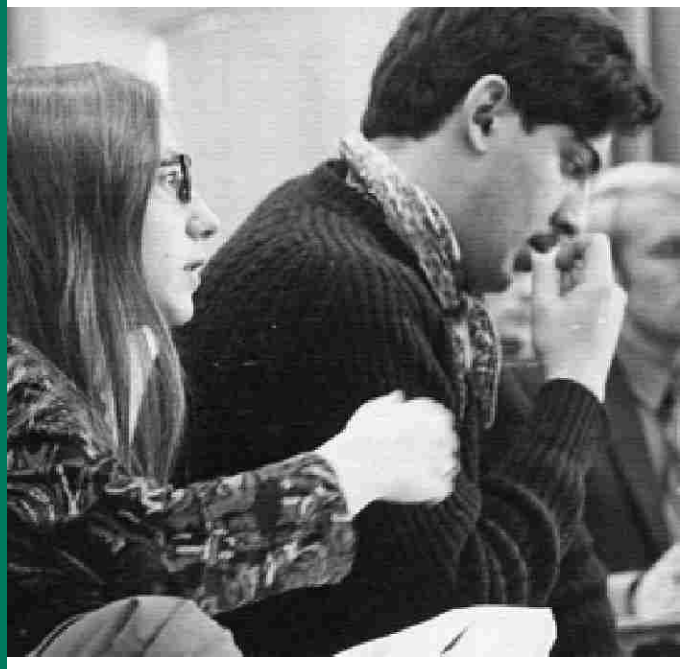

एक बार हिन्दी के एक प्राध्यापक ने अपने विद्यार्थियों के लिए एक कथा-लेखन कार्यशाला का आयोजन किया। वह एक ऐसा नया प्रयोग था जिसका उद्देश्य यह दर्शाना था कि यदि लेखक अच्छा शिल्पकार हो, तो वह किसी भी विषय पर अच्छी कहानी लिख सकता है। इस कार्यशाला के लिए विद्यार्थी भी काफी उत्साहित थे, क्योंकि उसके दौरान कोई पाठ नहीं पढ़ाया जाने वाला था। न ही तैयारी के रूप में कुछ पढ़ने या सामग्री ढूंढ़ने की आवश्यकता थी। कार्यशाला में भाग लेने के लिए किसी प्रकार के नियमों का पालन करने की ओर ध्यान देने के कोई निर्देश भी नहीं दिए गए थे। हर प्रकार की छूट थी - जो चाहे करें या न भी करें। बस कार्यशाला में समय पर पहुंचना था। अनेक विद्यार्थियों ने उसे छुट्टी के दिन के रूप में लिया। कार्यशाला का स्थल विद्यालय का साधारण कमरा होते हुए भी एक कक्षा के बदले एक ऐसे प्रदर्शनी स्थल की चहल-पहल से भर गया था, जिसमें बैठने के लिए कुर्सियों की कतारें बिछी हुई थीं। जब सब अपने स्थानों पर बैठ गए, तो प्राध्यापक जी ने कार्यशाला का शुभारम्भ करते हुए श्यामपट्ट पर लिखा : यह वाक्य पूरा कीजिए। वाक्यांश था : हम रहें —.

कार्यशाला में कुछ देर तक खलबली-सी फैली रही। क्या मतलब है इसका! प्राध्यापकजी की ओर से किसी प्रकार की सहायता मिलती दिखाई नहीं दी। अंततः एक विद्यार्थी झिझकते-शर्माते हुए उठा, और वाक्य पूरा करते हुए बोला 'ठाठ से।' मेरा वाक्य है 'हम रहें ठाठ से।'

बड़ा बेतुका-सा वाक्य था वह। सब विद्यार्थी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। बस इतना ही! या कुछ और। जब प्राध्यापकजी की ओर से सिर हिलाने के अतिरिक्त कोई अन्य प्रतिक्रिया न दिखाई दी, तो सभी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उस तरीके में कोई आपत्ति नहीं है। तब — सुझावों की झड़ी लग गई।

(हम रहें) इस बोरी और टाट में?
(हम रहें) किसी की बाट में?
(हम रहें) कहां?
(हम रहें) इस शहर में!
यह शहर तो गंदा है।
तो जाइए शिमला।
परन्तु शिमला तो ठंडा है।
मगर वहां तो अपना धंधा है।
हुजूर, ध्यान रहे, धंधा तो मंदा है।

> *एक विद्यार्थी झिझकते-शर्माते हुए उठा और वाक्य पूरा करते हुए बोला 'ठाठ से।' मेरा वाक्य है 'हम रहें ठाठ से।' बड़ा बेतुका-सा वाक्य था वह। सब विद्यार्थी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। बस इतना ही! या कुछ और।*

या गंदा है?

एक विद्यार्थी तनकर खड़ा हो गया। इसका रहने से क्या सम्बन्ध? अपनी समस्या तो यह है कि हम रहें किसके साथ?

मैं बताता हूं, रहिए मेरे साथ।

आपने शीशे में अपना मुंह देखा है?

आप शिष्टता का दायरा लांघ रहे हैं, चुप रहिए।

प्राध्यापकजी ने स्थिति को संभालते हुए हस्तक्षेप किया। 'इस कार्यशाला में किसी को चुप करने का अधिकार केवल मुझे है।'

उस विद्यार्थी ने शिकायत के स्वर में कहा, 'परन्तु मान्यवर, इन्होंने मेरे मर्म को कुरेदा है।'

एक अन्य विद्यार्थी ने फबती कसी : 'क्या नाजुक दिल पाया है।'

'थोड़ा ध्यान रखिए।' एक अन्य विद्यार्थी चहका। 'बड़ी सुकुमार काया है।'

पहला विद्यार्थी दोबारा उठ खड़ा हुआ। 'मान्यवर, यह सारासर अशिष्टता है।'

इससे पहले कि प्राध्यापकजी कुछ कहें, एक अन्य विद्यार्थी बोल उठा। 'अजी, इनके साथ नहीं, तो किसी अन्य मित्र के साथ रह लीजिए।'

'कोई सहेली ढूंढ़ लीजिए या लौट जाइए माता-पिता के पास।'

एक अन्य विद्यार्थी ने ठठोली की। 'अरे साहब, बड़े मजबूर हैं; परिस्थितियों ने भले ही जकड़ डाला हो, बेचारे के दिल में अभी भी बसी है एक छोटी-सी आस एक सहेली के साथ रहने की।'

'शादी से पहले सहवास! यह तो अनैतिकता है।'

'आप नैतिकता के ठेकेदार हैं?'

'यह नैतिकता का नहीं, सामाजिक पतिपाटी का प्रश्न है।'

'समाज से इतना ही डरते हैं, तो रहिए अकेले। डरते हैं समाज से, परन्तु सपने देखते हैं सुकुमार सहेलियों के।'

वह विद्यार्थी झुंझला उठा। 'क्या समाज और किसका डर!' उसने प्राध्यापकजी की ओर बड़ी दैन्य दृष्टि से देखा। 'हम तो उलझ गए हैं, अब आप ही दिखाइए दिशा।'

'सचमुच मुझे आप लोगों से थोड़ी निराशा हुई है। आपका काम तो केवल उस वाक्य को पूरा करना था, जो कुछ लोगों ने किया भी, परन्तु अधिकांश न जाने किन-किन मामलों में उलझ गए।' प्राध्यापकजी बोले, 'मैं एक बार फिर आपको याद दिलाना चाहूंगा, मेरा काम कोई भी गुत्थी सुलझाना नहीं है। मेरा उद्देश्य आपको एक रुचिकर वाक्य की संरचना की ओर अग्रसर करना है।'

'परन्तु गुत्थी को सुलझाए बिना वाक्य पूरा नहीं किया जा सकता।'

पांच सौ साल पुराने मुर्दे आप क्यों उखाड़ रहे हैं? हमारी तो बात छोड़िए, वह जिस देश का था, उसी देश की नई पीढ़ी के किसी भी व्यक्ति के सामने उसका नाम लो, तो वे नाक-भौं चढ़ाने लगता है।

'यह आपका मत है।' प्राध्यापकजी ने टोका। 'आप केवल वाक्य बनाने के बारे में सोचिए। आप में से कुछ ने मजेदार वाक्य बनाए भी हैं। उनसे ही थोड़ी प्रेरणा लीजिए।'

'साहब, हम तो हार गए। अब आप ही कोई अच्छा-सा वाक्य बनाकर हमें दिखाइए।' एक विद्यार्थी मुंह लटकाकर खड़ा हो गया।

'अच्छा, एक पुराना, प्रसिद्ध वाक्य पेश है - हम रहें या न रहें, यही प्रश्न है।'

'यह प्रश्न तो एक अन्य व्यक्ति भी पूछ चुका है।'

'हां, अवश्य। बहुत पहले उठाया था यह प्रश्न उसने। नाम था उसका शेक्सपीयर।'

'पांच सौ साल पुराने मुर्दे आप क्यों उखाड़ रहे हैं? हमारी तो बात छोड़िए, वह जिस देश का था, उसी देश की नई पीढ़ी के किसी भी व्यक्ति के सामने उसका नाम लो, तो वे नाक-भौं चढ़ाने लगता है।'

प्राध्यापकजी को वह रवैया पसन्द नहीं आया। उन्होंने कहा, 'मेरी आपको एक सलाह है। इस प्रकार की कोई बात कहने से पहले थोड़ा सोचना चाहिए। जिस लेखक को आप पुराना मानकर फेंक देना चाहते हैं, वह आज भी हजारों-लाखों लेखकों का प्रेरणा-स्रोत है; न जाने कितने लोग उसकी शैली में लिखना चाहते हैं। मेरी सलाह है कि आप लिखने से पहले कुछ पढ़िए। शेक्सपीयर, कालीदास या जयशंकर प्रसाद, कुछ भी। उन लोगों ने जो लिखा उसमें अपनी बात को प्रभावकारी ढंग से प्रकट करने के अनेक गुर छिपे हुए हैं। उन गुरों को समझिए और उनके माध्यम से अपनी बात नए ढंग से प्रस्तुत कीजिए।'

एक विद्यार्थी विरोधभरे स्वर में बोला, 'क्षमा करें। आप प्रभावकारी लेखन के गुर सिखाने की आड़ में हमें नकल करने की सलाह दे रहे हैं।'

एक अन्य विद्यार्थी चिल्लाने लगा। 'आपकी बातों में मुझे उपदेश की गंध आ रही है, जो हमें स्वीकार नहीं।'

'देखिए, इससे पहले कि मैं किसी विद्यार्थी को इस कार्यशाला से निष्कासित करने के लिए बाध्य हो जाऊं, मैं इसे भंग—।' अभी वह वाक्य पूरा हो भी नहीं पाया था कि अनेक विद्यार्थी अपने स्थानों से उठकर दरवाजे की ओर बढ़ चले। उसी अफरातफरी में प्राध्यापकजी कहते प्रतीत हुए 'आज की कार्यशाला पर अपनी टिप्पणी लिखकर कल कक्षा में आइए', जिसे कुछ ने सुना और कुछ ने नहीं सुना।■

विनय मोघे
इंदौर में जन्म. वाणिज्य स्नातक. विभिन्न पत्र-पत्रिकामें आलेख, लघुकथा एवं व्यंग्य रचनाओं का प्रकाशन.
सम्पर्क : टी-३, श्रीराम हाइटस, ६२२ ए/ई, वार्ड शाहुपुरी गली नंबर एक, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
ईमेल - moghev@ymail.com

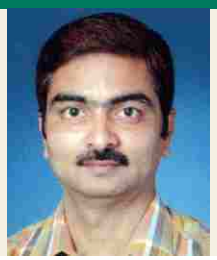

दुनिया में आए हैं तो जीना ही पड़ेगा

हमने मान लिया है कि यदि हमें इस दुनिया में ठीक से जीना है तो हमें भी वैसे ही चलना पड़ेगा जैसे दुनिया चल रही है। पर यदि हम गंभीरता से सोचें तो पाएँगे कि यह सही नहीं है।

आज की जीवन शैली में किसी के पास इतना समय नही है कि थोड़ा रुके और सोचे कि इस जीवन शैली को अपनाने के चक्कर में कही हम कुछ ऐसा तो नही कर रहे जो हमें नहीं करना चाहिए। आमतौर पर बदलते जमाने की दुहाई देकर हम अपना व्यवहार तथा आचार विचार बदलते जा रहे हैं। हमने मान लिया है कि यदि हमें इस दुनिया में ठीक से जीना है तो हमें भी वैसे ही चलना पड़ेगा जैसे दुनिया चल रही है। पर यदि हम गंभीरता से सोचें तो पाएँगे कि यह सही नहीं है। जरूरत है तो बस कुछ पल रुक कर यह सोचने की कि सही क्या है। आइए, कुछ ऐसी ही बातों को विस्तार से देखते हैं, जिन्हें हम सिर्फ यही सोच कर करते हैं कि यह तो आज के जमाने की आवश्यकता है।

बोलना, चिल्लाना, गालियां देना : यह एक आम धारणा है कि बोलना जरूरी है, चुपचाप रहने से काम नहीं होता। बोलने वाले के खट्टे फल बिक जाते हैं, पर चुप रहने वाले के मीठे फल भी नहीं बिक पाते। बोलने में भी दम होना चाहिए जिसे आज की भाषा में लगभग चिल्लाना ही कहना ठीक होगा। यदि आप चिल्लाओगे नहीं तो आपका काम नही होगा। कई लोग ऐसे उदाहरण देते पाए जाते हैं कि चीख पुकार करने के बाद ही उनका काम मिनटों में निपट गया, जब तक शांति से बात कर रहे थे, उनकी कोई सुनवाई नही हो रही थी।

यही बातें गालियों या अपशब्दों पर भी लागू होती हैं। आज की तारीख में जो व्यक्ति गाली गलौज नही करे उसे बेवकूफ ही समझा जाता है। एक विशेष अंदाज में गालियां देने को विशेष योग्यता का दर्जा प्राप्त है। झगड़ों तथा हाथापाई की नौबत के समय इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

ईमानदारी भूल जाओ : प्रायः यह कहा जाता है कि यदि आप तथाकथित ईमानदार हैं तो इस दुनिया में आपका गुजारा मुश्किल है। वह जमाना गया जब ईमानदार तथा ईमानदारी की कद्र होती थी। अब तो आपको थोड़ा-बहुत बेईमान बनना ही पड़ेगा। यही सोचकर एवं एक दूसरे को देख सुनकर बेईमानों की संख्या बढ़ती जा रही है। अफसोस की बात यह है कि ईमानदार और बेईमान की संख्या का अंतर दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है।

व्यसनों के बिना भी क्या जीना : आपको शराब, सिगरेट, तमाखु, गुटखा, नशीली दवाइयों जैसा कोई व्यसन होना चाहिए। यदि आपको कोई व्यसन नहीं होगा तो आप लोगों से मेलजोल कैसे बढाएंगे। आपसी मेल मिलाप का माध्यम तो यही चीजें हैं। यदि आप किसी व्यसन के आदि नहीं हैं तब तो आप जिंदगी का असली मजा उठा ही नहीं रहे हैं। जीवन यूं ही बरबाद कर रहे हैं।

डोन्ट बी इमोशनल 'बी प्रोफेशनल' : किसी भी मामले में किसी के लिए भी इमोशनल या भावुक होने की जरूरत नहीं है। आज की दुनिया में समय किस के पास है भावुक होते रहने के लिए। भावुक होना तो कमजोर लोगों की निशानी है - 'बी स्ट्रांग'।

पॉवर इज मस्ट : यदि इस दुनिया में जीना है तो आपके पास कोई पॉवर होना चाहिए। जैसे मनी पॉवर, मसल पॉवर, पॉलिटिकल पॉवर आदि। यदि आपके पास कोई पॉवर नही होगी तो कैसे आप इस जालिम दुनिया का सामना कर पाओगे। पॉवरलेस आदमी का यहां कोई वजूद नहीं है।

ये और इस तरह की कई बातें हम अपने आसपास न सिर्फ सुनते हैं बल्कि अब तो बदलाव के तहत यही सब देखते भी हैं। यदि हम कहें कि दुनिया को बदलने में हम सब जिम्मेदार हैं तो गलत न होगा। यदि ऐसी बातों का वर्चस्व रहेगा तो दुनिया बदलने में कितना समय लगेगा इसका अंदाजा हम लगा सकते हैं।■

आत्माराम शर्मा

२६ फरवरी १९६८ को ग्राम खरगापुर, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में जन्म. हिन्दी साहित्य में एम.ए. और एम.सी.ए. की उपाधि. नईदुनिया समाचार-पत्र में कला-समीक्षक के तौर पर लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताओं का प्रकाशन. 'गर्भनाल पत्रिका' के संस्थापक सदस्य एवं पूर्व-सम्पादक. सम्प्रति : जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश के सृजनात्मक उपक्रम 'मध्यप्रदेश माध्यम' में उप प्रबन्धक.

सम्पर्क : डीएक्सई-२३, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.). ईमेल : atmaram.sharma@gmail.com

बातचीत

हिन्दी-प्रेमी डॉ. तोमोको किकुचि से आत्माराम शर्मा की बातचीत

आत्माराम : **अपने बचपन, परिवार, और शहर की स्मृतियों को पाठकों के साथ साझा करना चाहेंगी ?**

डॉ. तोकोमो किकुचि : मेरी पैदाइश जापान के पूर्वोत्तर क्षेत्र में फुकुशिमा जिले में हुई। मेरे शहर फुकुशिमा का अर्थ है कि 'सुख का द्वीप' और उसी नाम के अनुकूल यह बहुत खूबसूरत जगह है। फुकुशिमा जिले में एक तरफ समुद्र का तट है तो दूसरी तरफ अनेक पहाड़ हैं। वहाँ खेती-बाड़ी और मत्स्य का प्रचलन अधिक है। फुकुशिमा तरह-तरह के फल, सब्जी और चावल के लिए अत्यंत मशहूर है।

११ मार्च २०११ को जापान में आये तीव्र भूकंप ने फुकुशिमा स्थित परमाणु संयंत्र को बुरी तरह से प्रभावित किया। उस हादसे को दो साल गुजर गये तो भी फुकुशिमा परमाणु संयंत्र पूरी तरह नियंत्रित नहीं हो पाया है। अभी भी वहाँ से खतरनाक रेडियोधर्मी विकिरण लगातार हो रहा है। दुर्घटना के दिन मैं भारत में थी और जापान में रहने वाले अपने परिवार की चिंता करती रही। कई दिनों तक जापान के भूकंप और फुकुशिमा के परमाणु संकट के बारे में अनिश्चय की स्थिति रही। मैं अपने परिवार को लेकर बेहद चिंतित थी, लेकिन शुक्र है कि इस हादसे में मेरे माता-पिता और छोटी बहिन को क्षति नहीं हुई। उस मानसिक संघर्ष के बाद मैं यह अच्छी तरह समझ गई कि परमाणु संयंत्र का सवाल मानवाधिकार से जुड़ा है।

डॉ. तोमोको किकुचि

जापान के पूर्वोत्तर क्षेत्र फुकुशिमा में जन्म। टोक्यो में दो साल हिन्दी भाषा सीखने के बाद १९९२ में भारत आईं। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, महारानी कॉलेज राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में बी.ए. (हिन्दी, समाजशास्त्र, शास्त्रीय संगीत सितार), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हिन्दी में एम.ए. से पीएच.डी. तक की शिक्षा पूरी की। हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य, संस्कृति और विश्व शांति के बारे में लिखती हैं। २००९ में 'महादेवी वर्मा की विश्वदृष्टि' (आलोचना) पुस्तक का प्रकाशन हुआ। जापान की मशहूर सचित्र बाल-पुस्तक 'हिरोशिमा का दर्द' का हिन्दी में अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित। हिरोशिमा और परमाणु बम से संबंधित जापानी एनीमेशन फिल्म 'सारस पर चढ़ कर' का हिन्दी अनुवाद कर उसको डब करवाया। हाल ही में जापान की सुप्रसिद्ध कवियित्री कानेको मिसुजु की जीवनी और कविताओं के हिन्दी अनुवाद की पुस्तक प्रकाशित हुई। दक्षिण अफ्रीका में आयोजित ९वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में आपको सम्मानित किया गया है। सम्प्रति - हिन्दी और जापानी में लेखन और अनुवाद तथा हरियाणा में निवास।

खोजिये! हिन्दी का प्रसार कहाँ और किस तरह हो रहा है

आज परमाणु संयंत्र की दुर्घटना के कारण फुकुशिमा की भूमि, समुद्र, आकाश, सब्जी, फल, मछली, दूध आदि सब रेडियोधर्मी विकिरण से दूषित हो गए हैं। मेरे माता-पिता अपने छोटे से खेत में सब्जियाँ बहुत शौक से उगाते थे और खाते थे। अब उन लोगों का वह छोटा-सा सुख छिन गया है। उनका खेत भी रेडियोधर्मी विकिरण से दूषित हो गया है। यह छोटा-सा खेती का काम मेरे माता-पिता के लिए, खासकर पिताजी के रिटायर होने के बाद उन दोनों के जीवन में एकमात्र ऐसा काम था जो उनके जीवन को समृद्ध बनाता था। इस तबाही में जापान के आम आदमी को अनेक तरह के दुखों को झेलना पड़ रहा है। रेडिएशन के स्तर को देखें तो फुकुशिमा में कई जगहों की स्थिति आज भी खतरे की सीमा को पार कर चुकी है। वहां एकदम असामान्य स्थिति है, फिर भी लोगों को सामान्य जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। फुकुशिमा के लोगों को यह एकदम सही कहा गया है कि रेडियोधर्मी विकिरण का असर तुरंत पड़ने वाला नहीं है। परंतु यह भी सच है कि २० साल या ३० साल बाद इसका असर जरूर दिखाई देगा और हम सब यह अच्छी तरह

> मेरा शहर फुकुशिमा देखने में अभी भी बहुत सुंदर है, पर असल में वह रेडिएशन से बहुत दूषित है। अब फुकुशिमा को पहले जैसा बनने के लिए बहुत लंबा समय लगेगा, तब तक मैं जीवित रहूँगी, कह नहीं सकती। यह सोचकर असीम दुख का अहसास होता है।

जानते हैं कि रेडियोधर्मी प्रदूषण का असर बड़ों की तुलना में बच्चों पर बहुत अधिक और गंभीर रूप में पड़ता है। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी किसी को यह नहीं मालूम कि इंसान रेडिएशन के कारण कब और किस रूप में बीमार पड़ता है। रेडिएशन की कोई गंध नहीं होती और उसे हम नहीं देख सकते। इसलिए मेरा शहर फुकुशिमा देखने में अभी भी बहुत सुंदर है, पर असल में वह रेडिएशन से बहुत दूषित है। अब फुकुशिमा को पहले जैसा बनने के लिए बहुत लंबा समय लगेगा, तब तक मैं जीवित हूं या नहीं, यह भी नहीं मालूम। यह सोचकर असीम दुख का अहसास होता है।

आपके मन में हिन्दी भाषा और भारत के बारे में जानने की उत्सुकता कैसे पैदा हुई ?

मैंने फुकुशिमा में १२वीं तक पढ़ाई की। उसके बाद हिन्दी सीखने के लिए टोक्यो गई और एशिया अफ्रीका भाषा विद्यापीठ में दो साल हिन्दी पढ़ी। इसके बाद भारत सरकार से छात्रवृत्ति मिली तो पढ़ने के लिए भारत आई और आज तक यहीं रहती हूँ।

असल में यह प्रश्न मुझे बहुत बार पूछा गया है कि आपकी भारत को जानने की उत्सुकता कब और कैसे पैदा हुई। उपर्युक्त मेरी जीवन यात्रा के अनुसार मेरे मन में उस तरह की उत्सुकता तब पैदा होनी चाहिए थी, जब मैं फुकुशिमा के स्कूल में पढ़ाई कर रही थी। परंतु उन दिनों मेरे साथ ऐसी कोई खास बात नहीं हुई, जिससे मैं खास तरह की भारतीय प्रेमी बन जाऊँ। इसलिए अब मैं सोचती हूं कि मेरे और भारत के बीच कहीं पूर्वजन्म का संबंध रहा होगा। खैर, उन दिनों टी.वी. और पुस्तकों के माध्यम से मुझे भारतीय संस्कृति की मामूली जानकारी मिलती रही और फिर धीरे-धीरे मैं भारत की ओर आकर्षित होने लगी। फिर मैंने सोचा कि भारतीय संस्कृति को समझने के लिए भारत की भाषा सीखने की जरूरत है, सो मैं हिन्दी सीखने के लिए टोक्यो की विद्यापीठ गई। भारत में आने के बाद मेरी रुचि का विस्तार हुआ तब मैं भारतीय भाषा से भारतीय समाज की ओर बढ़ने लगी।

भारत में आने के बाद मेरा जीवन एकदम बदल गया। यह जीवन ज्यादा आरामदेह नहीं था। मुझे एक विदेशी स्त्री होने के नाते तरह-तरह की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। यहाँ के जीवन के साथ मेरे मन में बहुत से प्रश्न थे और स्त्रियों की स्थिति को देखकर मेरा मन उलझ रहा था। ऐसे समय में मेरी मुलाकात महादेवी वर्मा जी के साहित्य से हुई और मेरे प्रश्नों का समाधान धीरे-धीरे मिलने लगा। परंतु आज भी सामाजिक समस्या, विश्व शांति आदि के विषय में कई प्रकार के प्रश्न मेरे मन में आते रहते हैं और वे ही मुझे कुछ लिखने या कुछ करने के लिए बाध्य करते रहते हैं।

जापानी समाज में भारत की सनातन संस्कृति एवं आधुनिक इंडिया की कैसी तस्वीर आप देखती हैं ?

आज के जापान में भारत के लिए दो छायाएँ मौजूद हैं। एक धार्मिक, दार्शनिक या रहस्यमय किस्म की है और दूसरी तेजी से आर्थिक विकास होने वाला आई.टी. देश की। भारतीय संस्कृति एक ओर जापानी लोगों को आध्यात्मिक रूप में आकर्षित करती है, तो दूसरी ओर बाजार की दृष्टि से भी आकर्षित करती है। कुल मिलाकर जापानियों के लिए भारत एक सुदूर देश है। आपस में एकदम विपरीत उन दो छायाओं को एक ही देश में देखना जापानियों के लिए काफी जटिल प्रयास होता है।

जापानी विश्वविद्यालयों के भाषा विभाग के बारे में बतायें। वहां हिन्दी की कैसी दशा है?

जापान में हिन्दी की पढ़ाई 'टोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' में सबसे पहले शुरू हुई, वहां १९०८ से कई भारतीय शिक्षकों द्वारा हिन्दी-उर्दू की पढ़ाई हिन्दुस्तानी भाषा के रूप में की जाती थी। उसके बाद 'ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' में १९२१ से हिन्दुस्तानी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई। १९६९ से 'तकुशोकु विश्वविद्यालय, टोक्यो' में एक सांध्यकालीन पाठ्यक्रम के रूप में हिन्दी पढ़ाई शुरू हुई। 'दाइतो बुनका यूनिवर्सिटी, साइतामा जापान' में भी हिन्दी का शिक्षण १९८६ से शुरू हुआ। 'एशिया अफ्रीका भाषा विद्यापीठ, टोक्यो' में १९६२ से हिन्दी की पढ़ाई शुरू हुई।

इन सभी विश्वविद्यालयों और विद्यापीठों में आज भी हिन्दी की पढ़ाई जारी है। इस प्रकार जापान और हिन्दी का संबंध लगभग १०० साल पुराना है। आधुनिक जापान में युवा वर्ग की जनसंख्या लगातार घटती जा रही है और इसी के कारण देश भर के विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या भी कम होती जा रही है। आज के छात्रों को योरपीय देशों की भाषाओं से अधिक आकर्षण होता है और एशियाई भाषाओं से अपेक्षाकृत कम। एशियाई भाषाओं में से चीनी भाषा का आकर्षण युवाओं के बीच अधिक है। हिन्दी भाषा सीखने वाले छात्र कम होते जा रहे हैं।

हिन्दी साहित्य की कौन-सी विधा आपको सर्वाधिक रुचिकर लगती है?

हिन्दी साहित्य की तमाम विधाओं में से मुझे उपन्यास, कहानी और कविता रुचिकर लगते हैं। उन तीनों की अपनी अपनी विशेषता और खूबी है, इसलिए किसी एक को प्रथम स्थान नहीं दिया जा सकता। उपन्यास से मुझे भारतीय समाज को विस्तार से समझने का मौका मिलता है। कहानी से भारत की सामाजिक समस्या, सांस्कृतिक विषय आदि का स्रोत मिल सकता है। कविता से प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के भारतीय साहित्यकारों की दृष्टि मिल सकती है।

क्या साहित्य के जरिये समाज में बदलाव सम्भव है?

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। किसी देश के या संस्कृति से जुड़े हुए समाज को समझने के लिए उसी का साहित्य एक सर्वोच्च विधा है। मैं साहित्य में समाज के किसी एक का न होकर हर तरह के पहलुओं को देखना चाहूंगी, बहरहाल मेरे लिए यह महत्वपूर्ण है कि अमुक पहलू के साथ उस साहित्य में क्या प्रेरणा पाई जाती है। साहित्य समाज में जरूर परिवर्तन ला सकता है, परंतु दूसरी ओर यह भी सच है कि समाज को बदलने के उद्देश्य मात्र से लिखी हुई रचना को साहित्य नहीं कहा जा सकता। समाज साहित्य को

> उपन्यास से मुझे भारतीय समाज को विस्तार से समझने का मौका मिलता है। कहानी से भारत की सामाजिक समस्या, सांस्कृतिक विषय आदि का स्रोत मिल सकता है। कविता से प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के भारतीय साहित्यकारों की दृष्टि मिल सकती है।

प्रभावित करता है और साहित्य समाज को। उत्कृष्ट साहित्य पाठकों को इसलिए प्रभावित और आकर्षित करता है कि उसी से हमें ऐसी प्रेरणा मिलती है जिससे समाज में रहने वाले मानव के जीवन को समृद्ध बनाया जा सकता है।

विश्व साहित्य में आप किसे शामिल करेंगी। अपने समय के साथ साहित्य के बर्ताव को आप किस नजर से देखती हैं?

विश्व साहित्य के कई आशय होते हैं, पर आम तौर पर विश्व साहित्य उसे माना जाता है जो विश्व के कई देशों के लोगों द्वारा पढ़ा जाता है और जिसका अनुवाद कई भाषाओं में किया जाता है। इसलिए मैं मानती हूं कि मात्र अंग्रेजी, जर्मनी, फ्राँसीसी आदि योरप की भाषाओं का साहित्य ही विश्व साहित्य नहीं है, बल्कि एशिया, अफ्रीका आदि की भाषाओं का साहित्य भी अनेक भाषाओं में अनूदित होकर कई देशों के पाठकों द्वारा पढ़ा जाता है तो वह भी विश्व साहित्य कहा जा सकता है।

मूलतः साहित्य समय और स्थान के आधार पर एक स्थानीय रचना होता है, परंतु उसकी स्थानीय प्रकृति होने के बावजूद विश्व साहित्य में सार्वभौमिकता की विशेषता पाई

जाती है। पाठकों के लिए विश्व साहित्य का विषय अजनबी और अनोखा हो सकता है, परंतु दूसरी ओर पाठकों को उसी विषय में कुछ ऐसे तत्व भी मिल जाते हैं, जिनको वे पहले से पहचानते हैं। इस संदर्भ में वर्तमान समय में विश्व शांति की स्थापना की दृष्टि से विश्व साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। अगर हम युद्ध का समापन चाहते हैं तो सबसे पहले विश्व में मौजूद कई संस्कृतियों को समझने का प्रयास करना जरूरी है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान विभिन्न देशों के लोगों को एक-दूसरे से जोड़ता है और उनके बीच मित्रता को बढ़ाता है। विश्व साहित्य इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सहायता देता है। जब एक भाषा के साहित्य का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जाता है तो विश्व साहित्य एक संस्कृति को कई संस्कृतियों से जोड़ देता है। इस प्रकार वर्तमान समय में विश्व साहित्य को विश्व शांति की स्थापना के लिए एक महत्वपूर्ण विधा भी कह सकते हैं।

विदेशों में लिखा जा रहा हिन्दी साहित्य नॉस्टेल्जिया का साहित्य है ?

इस बारे में अपनी राय प्रस्तुत करने के लिए अधिक शोध करने की जरूरत है।

आपकी निगाह में आम आदमी और एक लेखक की शख्सियत में भिन्नता होती है ?

कई तरह के लेखक होते हैं। यूँ तो सभी लेखक आम आदमी ही होते हैं और उनमें से अनेक अपनी सोच-समझ के कारण बरतावों में भिन्न भी दिख सकते हैं। परंतु उत्कृष्ट साहित्यकार सदा आम आदमी से भिन्न होते हैं और इसके बावजूद उनको आम आदमी के बारे में स्वयं आम आदमी से भी ज्यादा मालूम होता है। इस समृद्ध और तीव्र दृष्टिकोण के कारण ही उत्कृष्ट साहित्यकार आम आदमी से भिन्न होते हैं।

जापान में हिन्दी के कौन से साहित्यकारों की रचनाएँ लोकप्रिय हैं ?

जापान में हिन्दी भाषा प्रचलित नहीं है। वहाँ हिन्दी समझने वाले बहुत कम हैं और हिन्दी साहित्य को पढ़ने वाले भी ज्यादा नहीं हैं। जाहिर है कि जापानी पाठक हिन्दी साहित्य का जापानी अनुवाद पढ़ते हैं। मेरे शोध के अनुसार आज तक जिन हिन्दी साहित्यकारों के साहित्य का जापानी में अनुवाद हुआ है उनमें सबसे अधिक प्रेमचंद की रचनाओं का अनुवाद हुआ है, अतः कह सकते हैं कि जापानियों में प्रेमचंद की रचनाएँ लोकप्रिय हैं और आधुनिक भारतीय समाज के यथार्थ की अभिव्यक्ति जापानी पाठकों को आकर्षित करती है।

> *जापान में हिन्दी भाषा प्रचलित नहीं है। वहाँ हिन्दी समझने वाले बहुत कम हैं और हिन्दी साहित्य को पढ़ने वाले भी ज्यादा नहीं हैं। जाहिर है कि जापानी पाठक हिन्दी साहित्य का जापानी अनुवाद पढ़ते हैं।*

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के भविष्य को आप किस नज़र से देखती हैं ?

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के भविष्य के संदर्भ में अनेक संभावनाएँ हैं। मेरे ऐसा मानना है कि हिन्दी भाषा भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में रहने वाले भारतीयों के बीच भी हमेशा जीवित रहेगी। हिन्दी भाषा और साहित्य विदेशी विशेषज्ञों के बीच भी शोध के विषय के रूप में जीवित रहेंगे। विदेशों और भारत में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए भी हिन्दी की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

आज का युवा साहित्य से दूर होता जा रहा है, इसके लिये आप किसे दोषी मानती हैं ?

इसमें किसी को दोषी नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह सामाजिक प्रवृत्ति वर्तमान संस्कृति का एक रूप है। युगानुसार संस्कृति में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। पिछले जमाने में

युवाओं के लिए साहित्य ऐसी एकमात्र विधा थी जिसके माध्यम से उनको प्रेरणा, शिक्षा, मनोरंजन आदि मिल सकते थे। परंतु आज उन्हीं को प्राप्त करने के लिए युवाओं के बीच साहित्य के अलावा अनेक विधाएँ उपलब्ध हैं। टी.वी., इंटरनेट आदि आज के युवाओं को साहित्य से अधिक आकर्षित करते हैं। अतः परिणाम स्वरूप हमें लगता है कि युवा साहित्य से विमुख हो गया है। जाहिर है कि मानव जीवन के युवा स्तर में उच्च कोटि का साहित्य पढ़ना अत्यंत महत्वपूर्ण है, फिर भी उनको जबरन नहीं पढ़ाया जा सकता। पाठ्यपुस्तक की तरह साहित्य को पढ़ने से पाठक साहित्य का सही लाभ नहीं उठा सकते। साहित्य युवाओं को आकर्षित करे तो उसकी प्रेरणा भी सही रूप में उनके मन तक पहुंचेगी।

हिन्दी साहित्य में प्रायोजित पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं की भरमार है। इससे साहित्य लेखन के स्तर में इजाफा हुआ है या फिर गिरावट आई है?

मेरे विचार में हिन्दी के प्रायोजित पुरस्कार, सम्मान, विदेशी यात्राएँ आदि और साहित्य लेखन के बीच कम संबंध है, क्योंकि दोनों से अलग-अलग अपेक्षाएँ होती हैं। पुरस्कार, सम्मान और विदेशी यात्रा में औपचारिकता अधिक है और साहित्य लेखन एक वैयक्तिक कार्य है। ये दो तत्व किसी हद तक एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं, परंतु कौन किसको कितना प्रभावित करेगा यह साहित्यकार के अनुसार अलग होगा। इसलिए पुरस्कार आदि के कारण लेखन के स्तर में इजाफा होगा या गिरावट यह भी लेखक पर ही निर्भर रहता है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के बारे में आप क्या कहेंगी। क्या दुनिया की दूसरी भाषाओं में भी इस तरह के सम्मेलन आयोजित होते हैं?

दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में २२ से २४ सितम्बर २०१२ तक चले ९वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में मैंने भाग लिया। इस बार सम्मेलन का विषय 'भाषा की अस्मिता और हिन्दी का वैश्विक संदर्भ' रखा गया। इस प्रकार के सम्मेलन में यह विचार किया जाना चाहिए कि हिन्दी का प्रसार कहाँ और किस तरह हो रहा है, न कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार किस तरह किया जा सकता है। इस संदर्भ में दक्षिण अफ्रीका जैसे विदेश में सम्मेलन का आयोजन होना एक महत्वपूर्ण बात कह सकते हैं, क्योंकि वहां हम थोड़ी देर रहकर साक्षात् यह देख सकते हैं कि विदेश में हिन्दी की कैसी स्थिति होती है। इस सम्मेलन में २२ विदेशी हिन्दी विद्वानों को सम्मानित किया गया। मैं एक जापानी के रूप में उसी के लिए आभारी हूँ। ऑस्ट्रेलिया, रूस, चेक, इटली, चीन, मारीशस, बुल्गारिया, थाइलैंड, अफगानिस्तान, श्रीलंका, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन, उक्रेन, सूरीनाम, अणेरिका, दक्षिण अफ्रीका आदि से आए हुए

> *मुझे विभिन्न देशों के विद्वानों के साथ बात करने का दुर्लभ अवसर मिला। हम सब विदेशी हिन्दी विशेषज्ञ होने के नाते हिन्दी में ही बात करते रहे और एक साथ बैठकर हिन्दी और भारत से संबंधित अपने विशेष ज्ञान का आदान-प्रदान करते रहे।*

विद्वानों से मेरी मुलाकात हुई। मुझे विभिन्न देशों के विद्वानों के साथ बात करने का दुर्लभ अवसर मिला। अक्सर ऐसी स्थिति में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है, परंतु इस बार हमारी स्थिति अलग थी। हम सब विदेशी हिन्दी विशेषज्ञ होने के नाते हिन्दी में ही बात करते रहे और एक साथ बैठकर हिन्दी और भारत से संबंधित अपने विशेष ज्ञान का आदान-प्रदान करते रहे। हमारे बीच बहुत दिलचस्प विषयों पर बातें हुईं, जैसे हिन्दी की पत्रकारिता, भारत के आर्थिक अथवा सामाजिक समस्याएँ, हिन्दी साहित्य, भारतीय दर्शन इत्यादि। इस बीच मुझे अंदाज हुआ कि उन लोगों के देशों में हिन्दी की कैसी स्थिति होती है। इस सम्मेलन में सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन हुआ और दक्षिण अफ्रीका के युवकों ने भारतीय नृत्य बहुत शानदार ढंग से प्रस्तुत किया। जाहिर है वे लोग हिन्दी नहीं बोल सकते, पर भारत की संस्कृति से भलीभाँति परिचित हैं। विश्व हिन्दी सम्मेलन के जरिये हम भारत से दक्षिण अफ्रीका पहुंचे और वहां के युवकों ने इसी सम्मेलन के जरिए अपना नृत्य हमारे लिए प्रस्तुत किया। हिन्दी भाषा ने ही हम सबको नजदीक लाकर जोड़ दिया और हिन्दी भाषा के माध्यम से हमारे बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी संभव हुआ। सम्मेलन में बहुत से भारतीय दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर से आए हुए थे। वे लोग घर में हिन्दी शायद ही बोलते हैं और हिन्दी उन लोगों की मातृभाषा न होने के कारण उनके लिए अंग्रेजी भाषा ज्यादा सुविधाजनक लग रही थी। फिर भी उन लोगों ने मेरे साथ हिन्दी में ही बातें करने की कोशिश की और उसी के जरिए हमारे बीच बहुत अच्छी मित्रता स्थापित हुई। इस प्रकार मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीका में अभी हिन्दी भाषा जीवित है और उसी के साथ भारतीय संस्कृति भी काफी हद तक प्रचलित है।

जापान में भी जापानी भाषा से संबंधित छोटे-बड़े कई सम्मेलनों का आयोजन होता है। उदाहरणार्थ जापानी भाषा शिक्षा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्देश्य है कि विदेशों के विशेषज्ञों के बीच जापानी भाषा की शिक्षा और शोध से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाये। उसका प्रथम आयोजन १९९८ में टोक्यो में हुआ और उसके बाद अमेरिका, कोरिया, चीन, ऑस्ट्रेलिया और ताइवान में हुआ।■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

क्या सचमुच हमें इतने हथियार चाहिए

भारत की सामरिक क्षमता और हथियार नीति के बारे में विगत दिनों दो खबरें साथ-साथ आई हैं। पहली खबर का संबंध अग्नि-५ मिसाइल के सफल परीक्षण से है। इस परीक्षण के बाद भारत दुनिया के पाँच देशों के सुपर क्लब में शामिल हो गया है। अमेरिका, चीन, फ्रांस और रूस के बाद अब यह क्षमता हमारे देश ने विकसित कर ली है। इससे भारतवासियों का सीना आत्म गौरव से फूल उठा है तो स्वाभाविक ही है। आखिर कोई तो सूची है जिसमें हमारा देश अमेरिका, फ्रांस और रूस जैसे संपन्न देशों और अपने पड़ोसी देश चीन के साथ मौजूद है। चीन का महत्व इसलिए है कि एक बार उसके सामने हम मुँह की खा चुके हैं।

दूसरी खबर प्रसन्न करने वाली है या दुखी करने वाली, यह तय करना आसान नहीं है। एक ओर हथियार की टेक्नोलॉजी में हमारा दर्जा ऊपर से ऊपर उठता जा रहा है, पर दूसरी ओर हथियार आयात का हमारा बिल कम नहीं हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार, भारत इस समय दुनिया का सबसे बड़ा हथियार आयातक देश है। सन २००७ और २०११ के बीच यानी कुल पाँच वर्षों में भारत के हथियार आयात में ३८ प्रतिशत बढ़ती हुई। २०१० में हमने ३३३ करोड़ अमेरिकी डॉलर की कीमत के हथियार खरीदे। हमारे बाद दूसरे नंबर पर था सऊदी अरब, जिसने २५८ करोड़ अमेरिकी डॉलर की कीमत के हथियार खरीदे। इस सूची में कुछ अन्य नाम हैं दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, चीन, ग्रीस आदि। ये रकमें बहुत ज्यादा नहीं हैं। अरबों के पाँच-सात घोटाले तो हमारे देश में हर साल आराम से हो जाते हैं। लेकिन यह सूची भी बहुत गौरवपूर्ण नहीं है। ये देश दुनिया के सबसे उन्नत देशों में नहीं हैं।

इस संदर्भ में भारत द्वारा हथियारों के निर्यात की तस्वीर भी देख लेनी चाहिए। भारत अगर एक सभ्यता और संस्कृति का नाम भी है, अगर दुनिया को देने के लिए कोई संदेश इसके पास है, तो हम ऐसे भारत पर कदापि गर्व नहीं कर सकते जो विश्व बाजार में हथियार बेचता हो। हथियार बनाना और उनका आयात करना आत्मरक्षा के लिए जरूरी है। हमारे लिए तो और भी ज्यादा, क्योंकि एक बार हम गच्चा खा चुके हैं। लेकिन हथियारों का निर्यात करना एक और तरह की घटना है। इसका लक्ष्य युद्ध की संस्कृति को बढ़ावा देने के अलावा और

> भारत अगर एक सभ्यता और संस्कृति का नाम भी है, अगर दुनिया को देने के लिए कोई संदेश इसके पास है, तो हम ऐसे भारत पर कदापि गर्व नहीं कर सकते जो विश्व बाजार में हथियार बेचता हो।

क्या हो सकता है? दुनिया भर में सबसे बड़ा हथियार उद्योग संयुक्त राज्य अमेरिका का है और युद्ध-मुक्त तथा शांति-पूर्ण विश्व की रचना में उसकी क्या भूमिका है, यह हर कोई जानता है। इसलिए यह सुन कर हमें खुश नहीं होना चाहिए कि भारत हथियारों का निर्यात भी करता है। हर देश को अपनी जरूरत भर के हथियार ही बनाने चाहिए। हथियार एक भयानक चीज है। यह मानवता का दुर्भाग्य है कि आज भी उससे बचा नहीं जा सकता। चूँकि दूसरे हथियार बनाते और रखते हैं, इसलिए हमें भी बनाने और रखने पड़ते हैं। लेकिन हथियार बना कर किसी और देश को बेचने का कोई सभ्य तर्क नहीं हो सकता।

> *हथियारों के मामले में पूरी तरह से तैयार और लैस रहने के परंपरागत विचारों पर प्रश्नचिह्न लगाने का समय आ पहुँचा है। इस पर भावुकता से नहीं, वैज्ञानिक वस्तुपरकता के साथ विचार किया जाना चाहिए।*

यह खुशी की बात है कि दुनिया के १६ बड़े हथियार निर्यातक देशों में हमारे देश का नाम नहीं है। हम पाँचवें या छठे सवारों में हैं। एक रिटायर मेजर-जनरल के अनुसार, हमारे हथियार निर्यात का स्तर हास्यास्पद बिंदु पर पहुँच चुका है। सन् २००८-०९ में हमने ४१ करोड़ रुपए के हथियार बेचे थे। २००९-१० में हमने सिर्फ १२ करोड़ रुपए के हथियार बेचे। भारत में कलम का बाजार ही १६०० करोड़ रु. का बताया जाता है। इस मेजर-जनरल के मुताबिक, यह खस्ताहाली हमारे द्वारा बनाए जानेवाली सामरिक वस्तुओं की निम्न क्वालिटी की वजह से है। निर्यात के लिए हम बड़े-बड़े आइटम नहीं बनाते - छोटे-छोटे आइटम बनाते हैं और वह भी इतना खराब कि विश्व बाजार में उनकी कोई पूछ नहीं है। हथियार बेचने के मामले में चीन से हमारी कोई तुलना नहीं है। २०१० में उसने १४२ करोड़ अमेरिकी डॉलर के हथियार बेचे थे। इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि उच्चतर टेक्नोलॉजी के मामले में हम एक स्तर पर भले ही अमेरिका, फ्रांस, रूस और चीन के बराबर हो गए हों, पर निम्नतर टेक्नोलॉजी से बननेवाले हथियारों के उत्पादन और

क्वालिटी के मामले में हम फिसड्डी हैं। तभी तो हमें इतने बड़े पैमाने पर हथियारों का आयात करना पड़ता है। यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि सिर्फ घोटाला करने के लिए हथियारों की खरीद बढ़ाई जाती रही है।

जब भारत ने परमाणु बम बनाने की क्षमता हासिल कर ली और परमाणु विस्फोट के माध्यम से यह जगजाहिर भी हो गया, तब हमारे देश में दो तरह की प्रतिक्रियाएँ हुई थीं। एक पक्ष का कहना था कि परमाणु बम बनाने के क्षेत्र में उतर कर भारत ने बहुत बड़ी भूल की है। यह हमारी विश्व नीति के खिलाफ है। दूसरे पक्ष में बहुत थोड़े-से लोग थे। इनका कहना था कि परमाणु बम अल्टिमेट हथियार है - इसके बाद प्रतिरक्षा बजट पर खर्च कम हो जाता है। माना जाता है, पाकिस्तान के पास भी परमाणु बम बनाने की क्षमता है। समानता के इस तर्क से भारत और पाकिस्तान के बीच अब युद्ध हो ही नहीं सकता। सीमा पर छिटपुट झड़पें जरूर चालू रहेंगी। लेकिन जिसे परमाणु लाभांश (न्यूक्लीयर डिविडेंड) कहा जा सकता हो, ऐसी कोई चीज अभी तक देखने में नहीं आई है। यह परमाणु बम के दर्शन का अपमान है।

पूरी स्थिति पर गौर करने से, स्वाभाविक रूप से यह सवाल जेहन में आता है : क्या वास्तव में हमें इतने हथियार चाहिए? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम अपनी परमाणु क्षमता का विस्तार करें तथा अन्य हथियार सिर्फ वे बनाएँ जिनकी जरूरत सीमा पर होनेवाली मामूली झड़पों के दौरान होती है? क्या इक्कीसवीं सदी में यह मुमकिन है कि कोई ताकतवर देश अपने पड़ोसी देश पर कब्जा कर ले? क्या चीन ऐसा सोच भी सकता है? क्या पाकिस्तान या बाँग्लादेश के लिए यह संभव है? हथियारों के मामले में पूरी तरह से तैयार और लैस रहने के परंपरागत विचारों पर प्रश्नचिह्न लगाने का समय आ पहुँचा है। इस पर भावुकता से नहीं, वैज्ञानिक वस्तुपरकता के साथ विचार किया जाना चाहिए।■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

वेदान्तवेद्यं

ज्ञानगम्य जय रघुराई की बात कहने वाले तुलसी राम को वेदान्तवेद्यं कहते हैं। वे वेदान्त से जानने योग्य हैं लेकिन वेदान्त क्या है? वेदों का अन्त नहीं, वेदों का लक्ष्य। वेद भारत के सनातन प्रमाण हैं। इसलिए स्वाभाविक है कि वेदों ने अपने आसपास बहुत ईर्ष्या भी इकट्ठी की। लोगों ने उनके बारे में तरह-तरह के प्रमाद फैलाए। एक स्वनामधन्य इतिहासकार ने उन्हें गड़रियों के गीत कहा। डेनीलाऊ ने कहा कि 'मूल वेद एक प्राचीन द्रविड़ियन परम्परा थी जिसे आर्यों ने फिर से आकार दिया और बाद में संस्कृत में लिख लिया।' ये वही डेनीलाऊ हैं जिन्हें महाभारत भी निचली जात वाले द्रविड़ों (पांडवों) का ऊँची जाति वाले आर्यों (कौरवों) के प्रति विद्रोह नज़र आती है। उनके अनुसार ये द्रविड़ निचली जातियाँ एक काले रंग के द्रविड़ कृष्ण की मदद से उन कौरवों से जीत पाईं जिन्होंने उन्हें दास बना लिया था। उन्हें वैदिक धर्म जोरोष्ट्रियन धर्म से पैदा होता नज़र आता है। इन्हें वैदिक प्रतीक भौतिक चिह्नों से ज्यादा समझ में नहीं आते। मसलन अग्नि देवता इन्हें घर की वेदी पर लगातार जलने वाली आग लगते हैं। जेसुइट्स वैदिक प्रार्थनाओं को पैगन आफरिंग्स के रूप में प्रचारित करते रहे जबकि मिशनरियों को वेद 'बुराई की जड़' (द रूट ऑफ़ द ईविल) लगते रहे। अधिकतर पश्चिमी इतिहासकारों ने अपना दिमाग़ इस चीज़ पर खपाया कि किसी तरह भारत के इतिहास को ईसाई वर्ष के आरंभ के अधिकतम क़रीब ले जाया जाए। १५०० से १००० वर्ष ई.पू. तक इनका रचनाकाल मानने की कृपा वेदों पर की गई। अधिकतर इतिहासकारों ने इनका कोई आध्यात्मिक महत्व नहीं माना, बल्कि मैक्समूलर, जिन्हें मानसिक रूप से अब तक औपनिवेशिक लोग मोक्षमूल भी कहने से नहीं चूकते, ने (फाउंडेशंस ऑफ़ इंडियन कल्चर, पृ. २६२) वेदों के बारे में लिखा है कि वे बचकाने, मूर्खतापूर्ण यहाँ तक कि उन भीषण

> *डेनीलाऊ ने कहा कि 'मूल वेद एक प्राचीन द्रविड़ियन परम्परा थी जिसे आर्यों ने फिर से आकार दिया और बाद में संस्कृत में लिख लिया।'*

अवधारणाओं से भरे पड़े हैं जो उबाऊ, निम्न और साधारण हैं, कि वे मानवीय प्रकृति की स्वार्थपरकता और सांसारिकता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और केवल यहाँ-वहाँ ही कुछ दुर्लभ भावनाएँ हैं जो आत्मा की गहराई से आई हैं। मैक्समूलर ने बड़ी चतुराई से यह भी कहा कि यह तय करना कठिन है कि वेद सबसे प्राचीन पुस्तक हैं या ओल्ड टेस्टामेंट के कुछ अंश वेद के प्राचीनतम छन्दों के बराबर या उससे भी ज्यादा पुराने तो नहीं हैं। साफ़-साफ़ कहते भी नहीं, सामने आते भी नहीं। मैक्समूलर ने वेद को ११०० या १२०० ई.पू. से ज्यादा पुराना नहीं माना। मैं मैक्समूलर के तर्कों का खोखलापन उजागर नहीं करना चाहता। यह काम तो स्वामी दयानंद भलीभाँति कर चुके हैं। मैं तो इन तर्कों को मैक्समूलर के कुछ ऐसे ही और अपमानजनक तर्कों के प्रकाश में देखना चाहता हूँ। मैक्समूलर के महान शब्द आगे भी सुनें : 'वेदों के

छंदों में हम उस आदमी को देखते हैं जो प्रकृति की पहेली को बूझने के लिए अकेला छोड़ दिया गया है। वह अंधकार और तन्द्रा से सूर्य के आलोक द्वारा जगाया गया है और वह इसे कहता है- उसका जीवन, उसका सच, उसका प्रखर स्वामी और संरक्षक। वह प्रकृति की सभी शक्तियों को नाम देता है। वह आग को 'अग्नि' कहता है, सूर्य के प्रकाश को इन्द्र कहता है, तूफ़ानों को मरुत कहता है, प्रातः को उषा कहता है- वे सभी उसी की तरह, बल्कि उससे भी बेहतर तरीक़े से जीवन्त हैं। आदिम आदमी की मानसिक अवस्था की यह परिभाषा, मानवता के बहुत शैशव के दिनों में, जब वह अपने पालने से मुश्किल से बाहर ही आया था, एकदम ठीक है। आप बहुदेववाद या मिथकशास्त्र पर विस्मय क्यों करते हैं, वे तो अपरिहार्य हैं। वे हैं, यदि आप पसंद करें तो, धर्म का शैशव तत्व। लेकिन दुनिया का बचपन होता है और जब यह था तो बच्चे की तरह बोला (३००० वर्ष पहले), बच्चे की तरह इसकी समझ थी, बच्चे की तरह यह सोचता था... गलती तो हमारी है जब हम बच्चों की भाषा को आदमियों की भाषा समझ लेते हैं... प्राचीनता की भाषा बचपन की भाषा है... धर्म का शैशव तत्व समाप्त नहीं हो गया... उदाहरण के लिए, यह भारत के धर्म में मिलता है।'

मैक्समूलर के इस वक्तव्य में बचपन के प्रति इतना स्नेह झलकता है कि मुझे लगा उसके स्तनों से ज़रूर ये शब्द बोलते हुए दूध छलक आया होगा। कितनी ममता से वेदों को बचकाना कह रहा है वह। लेकिन चलिए उसके ममत्व का आदर करते हुए वेदों को प्रिमिटिव मेन के उद्गार मान ही लिया जाए। अब यदि ये आदिमानव के उद्गीत हैं तो प्रागैतिहासिक काल की उम्र आज से तीन हज़ार साल पहले तो नहीं हो सकती। तो वेद को कम से कम उतनी अवधि पुराना तो मानिए। मूलर के वर्णन से तो ऐसा लगता है कि गुहामानव ने जब बोलना सीखा, जब उसने प्राकृतिक चीज़ों

> ओल्ड टेस्टामेंट के कुछ अंश तो चूँकि मैक्समूलर के कथनानुसार ही वेदों से पहले लिखे गए। उन्हें क्या मानें? यदि वेद शिशुत्व हैं तो ओल्ड टेस्टामेंट के वे कुछ अंश, जिनका स्पष्टोल्लेख मैक्समूलर कभी नहीं करता, शायद तब लिखे गए होंगे जब मानवता गर्भ में थी।

का नामकरण करना शुरू किया तब वेद आए। कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह काम ईसा से एक हज़ार साल पहले का तो हो नहीं सकता। प्रागैतिहासिक काल तो कई-कई सहस्राब्दियों पुराना है। दूसरे, ओल्ड टेस्टामेंट के कुछ अंश तो चूँकि मैक्समूलर के कथनानुसार ही वेदों से पहले लिखे गए। उन्हें क्या मानें? यदि वेद शिशुत्व हैं तो ओल्ड टेस्टामेंट के वे कुछ अंश, जिनका स्पष्टोल्लेख मैक्समूलर कभी नहीं करता, शायद तब लिखे गए होंगे जब मानवता गर्भ में थी। तीसरे, सभ्यता के विकास के मैक्समूलर के तर्कों से निष्पन्न चरण देखता हूँ तो मुझे गश आ जाता है। वह प्रिमिटिव अवस्था ईसा के १००० वर्ष पहले थी और २०० वर्ष के भीतर सभ्यता इतनी विकसित हो गई कि महाभारत, कृष्ण और गीता के स्तर पर पहुँच गई। तब तो निश्चित रूप से वेदों में कुछ असाधारण होगा जिसने अपने सृजन से सभ्यता के विकास को इतनी चरम गति दे दी। चौथे, बचपन का ऐसे निरादर भी न करें। वड्र्सवर्थ यों ही बच्चे को मनुष्य का पिता नहीं कहता, फ्रायड यों ही नहीं कहता कि पाँच वर्ष की उम्र तक के बच्चे के अनुभव उसकी तीन चौथाई ज़िन्दगी का ब्लूप्रिंट हैं। पाँचवें, मैक्समूलर शब्दशः तब भी शिरोधार्य कि जब वह भारत के धर्म में शैशव देखता है। प्रकृति के तत्वों में देवत्व देखने वाला शिशु उस वयस्क से बेहतर और लाख गुना वरेण्य है जो ओज़ोन परत में छेद तो करता है लेकिन क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर नहीं करता, जो अगले ९५ वर्षों में आर्कटिक की पूरी बर्फ़ पिघलाने पर तुला हुआ है। भक्ति तो भोली होती है। उसे अपने इस भोलेपन पर शर्मिन्दगी भी नहीं है। ये शब्द और फिर भी रिचर्ड किंग सोचते हैं कि वेदान्त को ज़रूरत से ज्यादा भाव दे देने की ग़लती यूरोपीयों ने की जिसके कारण आज नव वेदान्तियों ने विश्व को उपनिवेशीकृत (Colonize) कर लिया है। सोचिए तो इस कारण से नव वेदान्त चल निकला, अपनी वैचारिक शक्ति के कारण नहीं। सोचिए तो कौन किसको कालोनाइज कर रहा था।

ऐसे में ये तुलसी राम को वेदान्तवेद्यं बोलने की धृष्टता कर रहे हैं। खैर मनाएँ, इनके समय में रोमिला थापर और अमर्त्य सेन न हुए, क्योंकि औपनिवेशिक, धर्मान्तरवादी यूरोपीय लोगों की तो ख़ैर आदत ही बन गई थी कि विजित देश के सांस्कृतिक जीवन को अस्त-व्यस्त करने के लिए मंत्रों का अति-साधारणीकरण करें लेकिन दुःख तो इन भारतीय भले मानुषों का है कि वे अपने देश के इस अयथार्थ को मान्यता देते हैं। जो लोग भारत की आर्थिक शक्ति तोड़ने के लिए विभेदाचारी कर-व्यवस्था थोप सकते थे, वे लोग भारत की सांस्कृतिक शक्ति को तोड़ने के मामले में निष्क्रिय रहें होंगे; ऐसी आशा ही कैसे की जा सकती थी? फ्रांत्ज फेनन ने उचित लिखा है : A national culture under colonial domination is a contested culture whose destruction is sought in systematic fashion (Wretched of the Earth) औपनिवेशिक लेखकों ने किस ऐसे देश की संस्कृति की हँसी नहीं उड़ाई जिसे यूरोप ने गुलाम बनाया हो? जिन्होंने भारत में कभी भी प्रातिनिधिक संस्थाओं का शासन नहीं होने दिया, उनसे वैदिक सभा और समितियों की व्याख्या कैसे सम्भव थी? जिस तरह से औपनिवेशिक यूरोपीय इतिहासकार अपने प्रत्यक्ष और परोक्ष, स्थूल और सूक्ष्म

औचित्यीकरण की ग्रंथि में व्यस्त था, उसी तरह से हमारे अनेक सुधी इतिहासकार उस बीमारी से पीड़ित हैं जिसे आजकल स्टॉकहोम सिन्ड्रोम कहा जाता है जिसमें अपने को बंधक बनाए रखने वाला ही छूटने के बाद भूरि-भूमि सराहना के क़ाबिल लगने लगता है। इसलिए इतिहास जिनका पेशा था, उनकी ओर से वेद की व्याख्या-विकृति के खंडन उतनी शक्ति से नहीं आए जितने स्वामी दयानन्द, रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द और महर्षि अरविन्द जैसे लोगों की ओर से आए जिनकी वैदिक परम्परा में गति थी और जो इसी कारण इतिहास-निर्माता बने, इतिहासकार नहीं। लेकिन प्रतिरोध के ये स्वर दिग्गज प्रतिभाओं से ही फूटे हों, ऐसा नहीं था। अल्जीरिया का उदाहरण बताता है कि वहाँ यह काम कथावाचकों ने सम्भाला और अपनी संस्कृति की पुनर्व्याख्या कुछ ऐसे की कि १९५५ में वहाँ की औपनिवेशिक सरकार ने इन कथावाचकों को ही गिरफ्तार करने की आज्ञा दे दी। ये कथावाचक वाचिक परम्परा के झंडाबरदार थे और वेद भी एक लम्बे समय तक वाचिक परम्परा के अंग रहे और श्रुति व स्मृति की तरह समझे-समझाए जाते रहे। १९वीं शती के पुनर्जागरण ने वेदों को हमारे स्वाधीनता-संघर्ष का प्रेरणाधार बना दिया और राजनीातिक विकास के सिलसिले में संस्कृति को कोल्ड स्टोरेज में रखने की बात वहीं फुस्स हो गई। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि Vedas are not inspired, but expired, not that they came from anywhere out side, but they are the eternal laws living in every soul. हुआ भी यही। वेदान्त का संदेश किताब से पढ़ने की जगह लोगों ने अपनी आत्मा के चिरंतन नियम की तरह जाना और वे तिलक-गाँधी बनकर कूद पड़े। इतिहासकार वेदान्त को पोथी में ढूँढ़ते रह गए, वह लोगों का प्राण बन गया, साँस बन गया। वेद आध्यात्मिक ज्ञान का प्रारम्भ थे, वेद आध्यात्मिक ज्ञान का लक्ष्य हो गए और वहीं वेदान्त फलीभूत हुआ। महर्षि अरविन्द ने इसे यों प्रकट किया The Veda was the beginning of spiritual knowledge. The Veda will remain it's end. The recovery of the perfect truth of the Veda is therefore not merely a desideratum for our modern intellectual curiosity, but a practical necessity for the future of the human race. तो जिस तरह से १९ वीं-२०वीं शती में अँग्रेज़ों की सामाजिक अभियांत्रिकी के लक्ष्य वेदान्त-वेत्ताओं के रहते पूरे नहीं हो सके वैसे ही मध्यकाल में वेदान्तवेद्यं के इसी सूत्र ने हमें सस्पन्द बनाए रखा। इसके बावजूद आज भी भलेमानस राजनीति के परिदृश्य से संस्कृति को निर्वासित करने में ही आधुनिकता मानते हैं। वेदान्तवेद्यं कहकर तुलसी हमें याद कराते हैं कि हमारे पास एक बड़ा बौद्धिक संसाधन मौजूद है। वह संसाधन जिसे मुक्तिकोपनिषद् ने 'तिलों में तैल की भाँति वेदों में वेदान्त सुप्रतिष्ठित है' शब्दों के साथ सराहा था

-तिलैषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः। जिसके बारे में विद्यारण्य स्वामी (पंचदशी २/१०८) ने कहा था : 'न वेदान्तात् प्रबलं मानमीक्ष्यते' कि वेदान्त से अधिक प्रबल प्रमाण है ही नहीं। आज के नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन भारतीय संस्कृति को अमर बनाने वाले वेदान्त को तार्किक भारतीयता का प्रमाण मानने में उतनी रुचि नहीं दिखाते जितनी वेदअनन्तर बौद्धों में। जैमिनी

शिव, पांडव, कृष्ण आदि को द्रविड़ बताने की कोशिशें पश्चिमी सभ्यता द्वारा वैसे ही अंजाम दी गईं जैसे प्रभु यीशु को 'श्वेत' बताकर उन्हें अपने हक़ में विनियुक्त करने की। जिम्बाब्वे के सेंट इग्नेशस कॉलेज के फादर वोल्फ श्मिट ने (१९९१) स्पष्ट लिखा : Jesus has been hijacked by western culture so as to make him "white", he was not.

की पूर्वमीसांसा वाले वेदान्त और बादरायण की उत्तरमीमांसा वाले वेदान्त में क्या तार्किकता नहीं थी? धीरे-धीरे एक मनोग्रंथि तैयार हो रही है। अब तो हो यह रहा है कि वेदों का उच्चारण-उल्लेख मात्र आपके भीतर यह भय जगा देता है कि कहीं हमें भी व्याधिमूलक उपाधियाँ तो नहीं मिलने लग जाएँगी। खंडन-मंडन की हमारी परम्परा तो वेदान्त-विमर्श से ही शुरू हुई थी। असमर्थ्य हो या औडोलोमी या कासकृत्सन सभी ने ब्रह्म-आत्मा के सम्बन्धों पर ज़बर्दस्त बहसें कीं। लेकिन भारतीय संस्कृति के बारे में अमर्त्य सेन एक धार्मिक स्किजोफ्रेनिया से ग्रस्त हैं। एक विभक्त मानसिकता से। इसलिए कठोपनिषद् के नचिकेता की बहस उन्हें उल्लेख के योग्य नहीं लगती। कठोपनिषद्कार को मालूम था कि एक दिन डेनीलाऊ जैसे लोग भी आएँगे जो वेदी की अग्नि को भौतिक ही समझेंगे। इसलिए कठोपनिषद् में अजनबी नचिकेता को अग्नि के तीन अर्थ समझाता है। वह एक सार्वभौम अग्नि की बात करता है जिस पर यह विश्व आधारित है और एक वैयक्तिक अग्नि की बात करता है जो हर व्यक्ति के हृदय में जलती है। वही अजनबी एक 'अनंत ऊर्जा' को भी अग्नि कहता है। अजनबी यह भी कहता है कि यह अकारण नहीं कि उसका नाम 'नचिकेता' है जिसका अर्थ होता है अचेतन।

शिव, पांडव, कृष्ण आदि को द्रविड़ बताने की कोशिशें पश्चिमी सभ्यता द्वारा वैसे ही अंजाम दी गईं जैसे प्रभु यीशु को 'श्वेत' बताकर उन्हें अपने हक़ में विनियुक्त करने की। जिम्बाब्वे के सेंट इग्नेशस कॉलेज के फादर वोल्फ श्मिट ने (१९९१) स्पष्ट लिखा : Jesus has been hijacked by western culture so as to make him "white", he was not. साम्राज्यवादी जब भारत मेंआए तो उसके पहले उन्होंने अफ़ीम की कुछ गोलियाँ भी भेजी थीं। वेदान्त ने उनका नशा उतार दिया। रिचर्ड किंग इस पर भारी आहत है। अपनी

पुस्तक (ओरिएंटलिज्म एंड रिलीज़न, पृ. १४०) में वह भारी ग़ुस्से से लिखता है : The reverse-colonization of the essentialism of neo- Vedanta is clearly an attempt to establish a modern form of advaita not only as a central philosophy of Hinduism but also as the primary candidate for the 'Universal Religion'. इसके लिए वह विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन और चिन्मयानन्द के वेदान्तिक आंदोलन को ही नहीं कोसता बल्कि थियोसोफिकल सोसायटी, सिस्टर निवेदिता आदि पर भी क्रुद्ध है। उसका कहना है कि विवेकानन्द ने पूर्व की परम्पराओं के बारे में पाश्चात्यों के अज्ञान का शोषण किया। उसका यह भी दावा है कि अँग्रेजों के आने से पहले तक भारत में धर्म नामक कोई चीज़ नहीं थी, कि वेदान्त एक पश्चिमी कंस्ट्रक्शन है, कि एक आध्यात्मीकृत, अ-सक्रियतावादी और रूढ़िवादी वेदान्त हिन्दुओं के केन्द्रीय दर्शन के रूप में उस ब्रिटिश चिन्ता से पैदा हुआ जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिरता और फ्रेंच क्रान्ति के व्यापक राजनीतिक परिणामों के प्रति आशंका थी। मज़े की बात यह भी है कि किंग रोमिला थापर को भी उद्धृत करता है और उनके शब्द 'सिंडीकेटेड हिन्दूवाद' को भी। उसका कहना है कि वेदान्त के सिद्धांतों पर हिन्दुओं की एक छोटी-सी संख्या को छोड़ कोई भरोसा नहीं करता।

इधर तुलसी हैं कि राम को वेदान्तवेद्यं कहे जा रहे हैं। क्या उन्हें पूर्वानुमान था कि वेदान्त में भारत के पुनर्जीवन की शक्ति है? कि वेदान्त के वैश्विक आयाम होंगे और यह विश्व-शिक्षा में प्रवृत्त होगा? शिक्षा से यहाँ मेरा आशय अकादमिक शिक्षा से नहीं है। पश्चिम की अकादमिक शिक्षा ने पूर्व को अपनी व्यवस्था में इंटीग्रेट नहीं किया। प्रायः पूर्व या तो अनुपस्थित है या यदि है भी तो हाशिए पर। 'ओरिएंटलिज्म' के नाम पर या तो कुछ पृथक दर्शन की शाखाएँ हैं या कुछ पूर्वी भाषाओं के नाम पर क़ायम किए गए पृथक विभाग हैं लेकिन बात पार्थक्य की नहीं समामेलन की हो रही है। इस एकांतीकृत पश्चिमी आदमी को तब बड़ा कष्ट होता है जब पूर्व की ओर से कोई धूमकेतु की तरह उठता है। विवेकानन्द पर हमने रिचर्ड किंग की खीझ देखी, रवीन्द्रनाथ टैगोर को भी बाद में यूरोप के इसी मत्सर का सामना करना पड़ा था जब यह कहा गया कि ईट्स के अलावा उन्हें कोई महत्व नहीं देता और बाद में ईट्स ने भी उन्हें भाड़ में जाने लायक समझा। जिन देशों को पाश्चात्यों ने देखा तक नहीं था उन देशों की सभ्यता को बर्बर बताकर ईसा का संदेश पहुँचाकर उपनिवेशीकृत करने के लिए पोप के साँड़ निकले। मुझे माफ़ करें, बुल का अर्थ तो धर्मादेश होता है। लेकिन किसी को देखे बिना बर्बर बता देना क्या पूर्वाग्रह की हद नहीं थी? १४९३, मई ४ का इंटर सेटेरा पेपल बुल पढ़ें। इसमें तत्कालीन पोप का आदेश है : Barbarous nations be subjugated and brought to the faith itself" "for the spread of the Christian Empire.' अभी १९९३ में इस पूर्वोक्त धर्मादेश के ५०० वर्ष बाद इंडीजीनस लॉ इंस्टीट्यूट नामक एक संस्था ने पोप जॉन पॉल द्वितीय को लिखा कि इस आदेश को वापस ले लें किन्तु वेटीकन ने अभी तक कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया है। पूर्वाग्रह की ऐसी ही हद जेम्स स्टुअर्ट मिल में मिलती है जिसने किसी भी भारतीय भाषा को सीखे बिना और भारत आए बिना भारत का इतिहास लिखा और उसे औपनिवेशिक अधिकारियों की गीता बना दिया गया। मिल का मानना था कि पास से देखने से उसके विवेचन में पूर्वाग्रह आ सकता है, लिहाज़ा भारत के किसी भी योगदान को न मानने वाला मिल का इतिहास भारत की अन्वीक्षा का आधार बन गया। आईसीएस अधिकारी मिल के भारतीय इतिहास का रट्टा लगाकर बनते थे। पहले ह्वेनसांग, यी जिंग, फाह्यान, अल्बरूनी जैसे लोग भारत आए थे। वे घूमते थे, यहां वर्षों रहते थे और जितना भी जैसा भी समझ पड़े वैसा लिखते थे। अब तो अपनी लाइब्रेरी में एक ही कतार की एक ही कुर्सी पर हमेशा बैठने वाले कार्ल मार्क्स भारत पर टिप्पणी करते हैं और हमारे उलटपंथी उन (मृत) विचारों को कलेजे से लगाए आज तक घूमते हैं। पोप के सांड़ पृथ्वी पर में फैले और महिषासुर-मर्दिनी तक के देश में सारा उत्पात मचाकर गए। यह चंगेज़ खाँ और नादिरशाह से भी बेकार स्थिति थी क्योंकि इन्होंने किसी ख़लीफ़ा से आज्ञा लेकर अत्याचार नहीं किए थे। धर्म की अपनी अहमकाना समझ के आधार पर उन्होंने ज़ुल्म ढाए वो बात अलग है। लेकिन किसी खलीफ़ा का धर्मादेश उनके पास नहीं था। न उन्होंने दिया, न इन्होंने लेने की जरूरत समझी। लेकिन जो सभ्य बनाने के मिशन पर निकले वे कभी हार्पर एवं रो की पुस्तक 'अ पीपुल्स हिस्ट्री ऑफ़ द यूनाइटेड स्टेट्स' (१९८०) में दिए गए दो आंकड़ों के फ़र्क़ की कहानी बयान करेंगे कि कोलम्बस के द्वारा अमेरिका खोजे जाने के वक़्त जो नेटिव जनसंख्या ८ करोड़ थी, वह १९१० की जनगणना के वक़्त २,१०,००० कैसे रह गई? कहीं कोर्टेस और कोलम्बस ने उन्हें परिवार नियोजन तो नहीं सिखा दिया था?

वेदान्त को जिस पूर्वाग्रह का सामना पहले और अभी करना पड़ा है, उसके चलते तुलसी की यह अनुशंसा और महत्वपूर्ण हो

> *जिन देशों को पाश्चात्यों ने देखा तक नहीं था उन देशों की सभ्यता को बर्बर बताकर ईसा का संदेश पहुँचाकर उपनिवेशीकृत करने के लिए पोप के साँड़ निकले। मुझे माफ़ करें, बुल का अर्थ तो धर्मादेश होता है। लेकिन किसी को देखे बिना बर्बर बता देना क्या पूर्वाग्रह की हद नहीं थी?*

> ब्रह्म वह जो विश्व की नाभि है और अपने स्वरूप मात्र में अमृत है, रावण वह है कि जिसकी नाभि में अमृत है, जो विश्व में विस्तृत और व्याप्त नहीं है, वह एक ऐसी ऊर्जा नहीं है जो कण-कण में हो और अपने स्वरूप में भले बदल जाए, लेकिन संहति में नहीं।

जाती है। वेदान्तवेद्यं का तुलसी-स्वर किसी पुस्तक के बारे में नहीं है, वेदान्त का ईश्वर प्रयोगशाला-प्रमाणित नहीं है। उसके अणुओं और रसायनों को किसी लैब में निरीक्षित नहीं किया गया। पुस्तक, कला, विज्ञान और अध्ययन के बिना रमण महर्षि या किसी निसर्गदत्त महाराज को वह विश्वास, भक्ति और पवित्रता से ही अनुभूत हो जाता है। वेदान्त सिर्फ ज्ञान नहीं है। प्रसिद्ध भक्त तुलसी जब अवतार राम को वेदान्तवेद्यं बोल रहे हैं तो वे उस ज्ञान की बात नहीं कर रहे जो अरण्यों और कंदराओं में, हिमालय की श्रृंखलाओं में उपलब्ध रहस्य है। वे उस अनुभव की बात कर रहे हैं जो गरीब की झोपड़ी में, शबरी के आश्रम में, दिन-प्रतिदिन के जीवन में हमें स्फूर्त करता है, जो हममें सत्यमेव जयते नानृतं का मनोबल विकसित करता है। यह वेदान्त किसी की छाया से दूषित नहीं होता क्योंकि यह आता ही द्वैत की उस परछाई को हटाकर है जो हमारी दृष्टि में दुविधा पैदा करती है। यह वेदांत व्यवहार मांगता है। विवेकान्द कहा करते थे कि वेदांत का आलोक घर-घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अंतर्निहित है, उसे जगाओ। ज्ञान या बौद्धिक स्तर पर वेदान्त की स्वीकृति और व्यवहार में उपभोक्तावादी ऐषणाओं की गुलामी - ये नहीं चलेगा। ज्ञान के स्तर पर वेदान्त का अद्वैत व्यवहार के स्तर पर निषाद, केवट, शबरी को गले लगाकर और उनके जूठे बेर खाकर ही प्रमाणित होगा। प्रकृति के प्रसारण स्थल से ईश्वरीय संदेश हर उस व्यक्ति को सम्बोधित होता है जिनकी तरंग-दैर्घ्य (वेवलेंग्थ) सही है। इस स्फटिक की असंख्य किरणें हैं। ब्रह्म सूत्र का प्रथम अध्याय का नाम ही समन्वय है और द्वितीय का नाम अविरोध है। ब्रह्म सूत्र के चौथे और आखिरी अध्याय 'फल' में सगुण उपासना का उल्लेख है। उपनिषद और भगवद्गीता के साथ ब्रह्मसूत्र वेदान्त की प्रस्थान त्रयी है।

कई लोगों में आजकल वेद को कर्मकांडपरक और वेदान्त को दार्शनिक बताकर फ़र्क़ करने की प्रवृत्ति चली है लेकिन यह भी उचित नहीं है। मनुस्मृति में तो कहा गया था कि धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'। वेदान्त और वेद एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। तभी वेदान्त ने प्रत्यक्ष और अनुमान के पहले शब्द प्रमाण की चर्चा की और आप्तवाक्य व महावाक्य का आदर किया। मीसांसा विधि और मंत्र दोनों का उल्लेख करती है। वेदान्त आदिशंकर, भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बार्क, बालदेव, विद्याभूषण, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर, विज्ञान भिक्षु आदि के द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में व्याख्यायित हुआ। आधुनिक समय में भी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि, निसर्गदत्त महाराज, श्री अरविन्द, स्वामी शिवानन्द, परमहंस योगानन्द, स्वामी पार्थसारथी आदि ने वेदान्त चिन्तन किया है। जिस वेदान्त ने टेसला, अर्विन श्रोडिंगर, वर्नर हाइजनबर्ग, फित्ज काप्रा आदि वैज्ञानिकों को प्रभावित और प्रेरित किया, वह वेदान्त यदि औपनिवेशक और उलटपंथी इतिहासकारों की चिढ़ का कारण बना तो इसके कारण उनके अवैज्ञानिक मस्तिष्क में हैं। ब्रह्मांड पुराण में तो बहुत पहले बता दिया गया था। कि अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मुझ पर प्रहार करेगा। (बिभेत्यल्प श्रुता द्वे दो माममं प्रहरिष्यति।)

वेदान्त या वेद को पलायनवादी कहने वाले यह नहीं देखते कि कृष्ण और राम दोनों ने उससे जीवन सक्रियता की प्रेरणा पाई। गीता का कर्मयोग तो है ही, योग वाशिष्ठ राम के बारे में ही एक कथा बताता है, जो वेदान्त-प्रेरित है। तदनुसार भगवान राम को संसार से तीव्र वैराग्य हुआ और वे विरक्त जीवन जीने के लिए तत्पर हो गए तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि राम, तुम संसार का त्याग क्यों करते हो। संसार क्या ब्रह्म से भिन्न चीज़ है? आलोचकों द्वारा यह नहीं देखा गया कि 'जगन्मिथ्या' कहने वाला 'अमृतस्य पुत्राः वयम्' भी कह रहा है। वेदान्त उस मूल अमृत स्रोत से हमें जोड़ रहा है। उससे जुड़कर ही राम उस रावण को मार सकेंगे जिसकी नाभि में अमृत है। ब्रह्म वह जो विश्व की नाभि है और अपने स्वरूप मात्र में अमृत है, रावण वह है कि जिसकी नाभि में अमृत है, जो विश्व में विस्तृत और व्याप्त नहीं है, वह एक ऐसी ऊर्जा नहीं है जो कण-कण में हो और अपने स्वरूप में भले बदल जाए, लेकिन संहति में नहीं। ब्रह्म को इसीलिए अमृतगर्भ कहा गया है। रावण अमृत-तत्व का भी कैपिटलाइजेशन करता है। उसे वह कण-कण में नहीं बिखराता, अपनी नाभि में समेटे हुए है। इसीलिए गर्भ में अमृत होते हुए भी वह अमृतगर्भ का विपरीत ध्रुव है। ब्रह्म ज्ञान को अमृत मानने वालों ने ही कहा- ब्रह्मणहि प्रतिष्ठा अममृतस्या व्ययस्यच। मनु ने बिना मांगे बाहुबल से कमाकर खाए हुए अन्न को अमृत और भीख में मिले अन्न को मृत कहा था- मृतंस्याद्याचितं भैक्ष्यममृतंस्या कदाचितं। इसलिए ऐसे पुरुषार्थी जीवनोन्मुख वेदान्त को पलायनवादी कहने के प्रलाप करने, वेदान्त का प्रकट कर्माचरण राम-कृष्ण में न देखने वालों को कैसे प्रभावित करेंगे? ये प्रलाप इस हद तक गए कि वेदान्त का प्रत्याख्यान भक्ति में ढूँढ़ने लगे। तुलसी इसी कारण जान-बूझकर राम को वेदान्तवेद्यं कहते हैं।■

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

समय और काल

समय क्या है और काल क्या है? यों तो दोनों लगभग समान अर्थवाले माने जाते हैं पर यदि शब्द अलग हैं तो भाव और आशय में भिन्नता तो है. पहिले समय पर चर्चा करेंगे. समय को हम कैसे पहिचानते हैं? अपने आसपास की वस्तुओं के रूपरंग स्वभाव आकार स्थान में जो बदलाव दिखता है उससे समय की पहिचान बनती है. हमारी बनाई घड़ी तो समय के परिवर्तन का संकेत मात्र देती है जबकि सूरज के उगने और डूबने में, फूलों के खिलने और मुरझाने में, बचपन यौवन और वार्धक्य के साथ आने वाले शारीरिक बदलाव में ही हमें समय के प्रभाव का वास्तविक बोध होता है. यदि हम 'एलिस इन वंडरलैण्ड' की किसी कथा में नन्ही एलिस के साथ किसी ऐसे लोक में पहुँच जाएँ जहां ये सब भौतिक परिवर्तन नहीं होते हों तो हम समय को या कहें कि समय के बदलाव को नहीं जान पाएंगे.

नल-दमयंती प्रेम कथा का प्रसंग है जब दमयंती के स्वयम्बर में देवता भी नल का रूप रखकर आए तो दमयंती को असली नल की पहिचान करना मुश्किल हो गया. देवताओं पर पृथ्वी के समय का असर नहीं होता इसलिए नल रूपधारी देवताओं के गले की मालाएं एकदम तरोताजा दिखती रहीं जबकि समय के साथ पदार्थ का रूपांतरण होने से, मानव नल की माला कुछ कुम्हला गयी इसी आधार पर दमयंती ने, अपने नल को पहिचाना.

> *सौन्दर्य की अनोखी अनुभूति ने आइंस्टीन के 'सापेक्ष समय' को कल्पान्त जीवी ब्रह्मा रूपी गणना-इकाई, आवर्तक समय को कृष्ण का सुदर्शन चक्र और निरपेक्ष काल को नटराज शिव का ललित रूप और आकार दे दिया है.*

समय इस प्रकार पदार्थ में बदलाव लाता है या कहें कि पदार्थ के रंग-रूपादि में बदलाव से समय की पहिचान होती है यह तो हुई समय की पहिली विशेषता.

अब समय की दूसरी खासियत देखें : समय का अनुमान व्यक्ति के और स्थान के अनुसार बदलता रहता है. दो व्यक्तियों के अनुभव किसी एक ही घंटे के समय पर अलग-अलग होंगे. जो व्यक्ति अपने प्रियजन से घुलमिलकर बातें कर रहा है अथवा अपनी पसंद का संगीत सुन रहा है उसे एक घंटे का समय कब गुजरा इसका पता ही नहीं चलेगा. वह कहेगा, अरे! मुझे लगा कि १०-१५ मिनिट ही हुए हैं, लगता है घड़ी तेज चल रही है. दूसरा व्यक्ति जो अपने बीमार परिजन की ट्रेन का इन्तजार कर रहा है पर ट्रेन देरी से चल रही है, तो उसे लगेगा कि घड़ी बहुत सुस्त चल रही है ऐसे में एक-एक मिनिट भारी लगेगा उसे. यह मानसिक जगत में व्यक्ति अनुसार समय की सापेक्षता का उदाहरण है.

आपको हैरानी होगी कि भौतिक जगत में भी ऐसा होता है पर हमें पता नहीं चलता. पहिले इसका शुरुआती उदाहरण देखिये. हम रोज ही सूरज को देखते हैं और यह मानते हैं कि

> *काल व्यापक अर्थ वाला है, निरपेक्ष है अदृश्य है और बिना पदार्थ के भी मौजूद रहता है; जब यही काल पदार्थ में दिखने वाला बदलाव लाने लगता है तो पदार्थ पर निर्भर ऐसा सापेक्ष काल ही, दिखाई दे सकने वाला समय कहलाने लगता है.*

सूरज जैसा है उसका असली रूप ही हम देख रहे हैं. पर यह हमारा भ्रम है, सूर्य का प्रकाश हम तक आने में ८ मिनिट २० सेकेण्ड का समय लगता है. इसका मतलब यह हुआ कि जो रूप हम सूर्य का देखते हैं वह ८ मिनिट २० सेकेण्ड पुराना होता है क्योंकि इतने समय में सूर्य में कुछ तो बदल ही जाता है, इसलिए प्रकाश के दूर से चल कर आने से हम हर समय ८ मिनिट २० सेकेण्ड पुराना सूर्य ही देखते हैं. इसी बात को आगे बढ़ाएँ. तारे व नक्षत्र तो हमसे इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश एक सेकेण्ड में एक लाख छयासी हजार मील की रफ्तार से चलते हुए भी हम तक कई हजार वर्ष बाद आता है इसलिए हम इन तारों-नक्षत्रों की हजारों वर्ष पुरानी छवि ही देख पाते हैं. यदि कोई तारा आज जन्म ले रहा है या नष्ट हो रहा है तो उसकी निशानी हमारे आसमान पर हजारों वर्ष बाद दिखेगी. मैरिनर-१० अंतरिक्ष यान ने खोज की है कि बुध ग्रह पर सूर्य का एक उदय अस्त, पृथ्वी के १७६ दिन के बराबर होता है, यदि पृथ्वी प्रदूषण के कारण हम बुध पर रहने का प्लान बनाएँ तो वहाँ २४ घंटे में सोने-जागने की हमारे मस्तिस्क में छिपी जैविक घड़ी 'बायोक्लाक' गड़बड़ा जाएगी.

अब श्रीमद्भागवत का एक प्रसंग देखिये जो इतनी बात समझने के बाद आपको काल्पनिक नहीं लगेगा. यह दो स्थानों में बहुत बड़े अंतर से उपजने वाले समयांतर का है. राजा ककुद्धि अपनी बेटी रेवती के साथ ब्रह्मलोक गए, ब्रह्मा से योग्य वर पूछने. उस समय ब्रह्मलोक में गायन वादन चलते देख वह कुछ क्षण वहाँ ठहरे रहे और संगीत संपन्न होने पर ब्रह्मा से निवेदन किया. ब्रह्मा ने हँस कर कहा, राजन! तुम्हारे मन में जो वर थे, उनके तो गोत्रों तक का भी अब पृथ्वी पर अता-पता नहीं बचा; तुम यहाँ कुछ पल ही ठहरे पर ब्रह्म लोक के इन कुछ ही क्षणों में पृथ्वी पर २७ चतुर्युगी का समय बीत चुका है, अब तो वहाँ द्वापर युग चल रहा है वहाँ कृष्ण के अग्रज बलराम ही तुम्हारी रेवती के योग्य वर होंगे. इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि पृथ्वीलोक और ब्रह्मलोक के समय के मापदंड अलग-अलग हैं. भौतिक जगत में भी इस प्रकार स्थान भेद से समय सापेक्ष हो सकता है, अलग-अलग पैमाने का हो सकता है और होता भी है.

इसे वैज्ञानिक प्रयोगों से भी जाँचा जा सकता है इसके लिए हमें आइंस्टीन की ट्रेन में बैठना पड़ेगा, पर माइकेल्सन के इस प्रयोग की जटिलता में हम नहीं जाएंगे अन्यथा यही समय हमें उबाऊ और लम्बा लगने लगेगा.

अभी हमने पदार्थ के परिवर्तन के कारण दर्ज होने वाली समय की पहिचान की बात की. पर यदि पदार्थ ही न हो तो समय का क्या होगा? इस पर चिन्तन फ्रांसीसी दार्शनिक गणितज्ञ अर्नेस्ट मैक ने किया और कहा कि यदि पदार्थ न रहे तो समय भी न रहेगा if matter disappears, time will also disappear उसकी इस बात को मजाक में लिया गया. मैक ने उदाहरण दिया कि बच्चों के पार्क में लगी चकरी के घूमने का पता, चकरी के चारों ओर स्थित पेड़, मकान, आकाश के बादल आदि जो पदार्थ पृष्ठभूमि में लगे हैं इनके बीच चकरी घूमने से लगता है. यदि ये सब पदार्थ न हों तो चकरी घूम रही है इसका बोध ही नहीं हो सकता. आइंस्टीन ने इस बात को समझा और अपने सापेक्षता सिद्धांत बनाने में इसकी मदद ली.

काल पर चिन्तन : पदार्थ नहीं तो समय नहीं - मैक का यह दार्शनिक चिन्तन जो अब एक वैज्ञानिक सचाई है, हमें एक नए सवाल से से रू-ब-रू कराता है : तब फिर क्या बचा रहता है? श्रीमद्भागवत (३/१०-१२) के अनुसार जब पदार्थमय जगत नहीं होता तब काल शेष रहता है. इस पर कई दृष्टिकोण हैं पर यहाँ सामान्य चर्चा की जा रही है. सृष्टि के आरम्भ होने के पहिले जब पदार्थमय विश्व अव्यक्त या अति सूक्ष्म अवस्था में होता है या कहें कि मूल प्रकृति में सत्व-रज-तम इन तीन गुणों की एक समान मात्रा होने से- गुणसाम्य अवस्था होने से कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता तब भी काल अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है. जब काल का संयोग अव्यक्त कहें या सूक्ष्म या बीज रूप से विद्यमान पदार्थ से होता

है तो पदार्थ में रूपांतर differentiation होने लगता है, उसकी अवस्था आकार, रूप, गुणदि में अंतर आने लगता है या कहें कि यह अव्यक्त से व्यक्त from unmanifest to manifest होने लगता है और यही सृष्टि का आरम्भ होता है

पदार्थ के गुणों में व्यतिरेक, रद्दो-बदल या डिफ्रेंशिएसन से ही काल की पहिचान बनती है, पदार्थ के बिना - काल है, इसका बोध ही नहीं हो सकता. काल की इस भूमिका पर कुछ ऐसी ही सरल व्याख्या श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कंध में की गयी है.

इस चिन्तन से यह बात सामने आई कि काल और पदार्थ या प्रकृति 'दिखने' के लिए एक-दूसरे पर निर्भर लगते हैं. यहाँ यह भी कह सकते हैं कि काल व्यापक अर्थ वाला है, निरपेक्ष है, अदृश्य है और बिना पदार्थ के भी मौजूद रहता है; जब यही काल पदार्थ में दिखने वाला बदलाव लाने लगता है तो पदार्थ पर निर्भर ऐसा सापेक्ष काल ही, दिखाई दे सकने वाला 'समय' कहलाने लगता है.

श्रीमद्भागवत का पदार्थ-काल परस्पर संबद्धता का विचार और आइंस्टीन का दिक्काल-गठजोड़ : न्यूटन ने अपनी लैटिन भाषा में लिखी प्रिंसीपिया में बताया था कि समय और पदार्थ दोनों एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, इनका एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं हैं : absolute Time and absolute Space ऐसा उसने, रेने दे कार्ते के दर्शन के आधार पर माना. पर आइंस्टीन ने इसे बदल दिया और बताया कि पदार्थ में लम्बाई-चौड़ाई और ऊंचाई केवल ये तीन दिशाएं अथवा आयाम ही नहीं होते, चौथा आयाम या डायमेंशन भी होता है 'समय'. इस चौथे आयाम समय के बिना पदार्थ के तीनों आयाम दिख ही नहीं सकते उनके इस दिक् काल संबद्धता या सातत्य space time continuum ने समूचे भौतिक शास्त्र को ही बदल कर रख दिया. यही बात श्रीमद्भागवत में भी कही गयी है जैसा कि अभी हमने देखा. इसलिए यदि संस्कृत भाषा को विज्ञान स्नातक स्तर तक अनिवार्य रूप से पढ़ाया गया होता तो भारतीय मनीषियों के चिन्तन से हमें मौलिक चिन्तन में उतनी ही मदद मिलती जितनी कि अठारह-उनीसवीं सदी तक ज्ञान-विज्ञान की भाषा लैटिन भाषा से और फिर उसके अनुवाद से पाश्चात्य वैज्ञानिक चिन्तन को मिलती रही और आज भी मिल रही है. नेहरू के भारत ने संस्कृत को केवल कर्मकांड या काव्य की भाषा माना और अंगरेजी को ज्ञान की खिड़की. इस पूर्वाग्रह के कारण संस्कृत के ज्ञान-विज्ञान की अनदेखी बढ़ती जा रही है. अब केन्द्रीय विद्यालयों में इसे ऐच्छिक बनाया जा रहा है.

समय के विरुद्ध यात्रा की ललित कल्पना : यदि समय एक नदी के प्रवाह की तरह है जिस पर कई तरह के पुल हैं तो हम इसके वर्तमान नाम के पुल पर खड़े हैं जहाँ से भविष्य पल,

नेहरू के भारत ने संस्कृत को केवल कर्मकांड या काव्य की भाषा माना और अंगरेजी को ज्ञान की खिड़की इस पूर्वाग्रह के कारण संस्कृत के ज्ञान विज्ञान की अनदेखी बढ़ती जा रही है अब केन्द्रीय विद्यालयों में इसे ऐच्छिक बनाया जा रहा है.

प्रतिपल वर्तमान बनकर हमारे सामने से गुजर रहे और वर्तमान भी निरंतर भूत काल में बदल रहा है. क्या हम इसके प्रवाह को उलट सकते हैं जिसमें हमारे सामने साबुत कप टेबिल से जमीन पर गिर कर टूटने के बजाय पहिले टूटा कप जमीन आए फिर यह उछलकर टेबिल पर पहुंचे और जुड़ जाए? क्या हम तीनों काल एक साथ देख सकते हैं? क्या हम विज्ञान कथाओं की तरह किसी टाईम मशीन में बैठ कर अंतरिक्ष के किसी गुप्त संकरे रास्ते से या ब्लैक होल से गुजर कर चार या पांच आयाम वाले विश्व में जा सकते हैं? समय सदैव तीर की तरह एक ही दिशा में जाता है रेखीय या linear है अथवा चक्राकार cyclic है? विज्ञान इन सब पर प्रयोग और चिन्तन कर रहा है. ब्रह्माण्ड विज्ञान इस प्रकार अब भौतिक विज्ञान का पर्याय बन चुका है. भारतीय चिन्तन धारा में ब्रह्मांड विज्ञान और इससे जुड़े समय और काल पर अत्याधुनिक वैज्ञानिक विचार सामग्री मौजूद है जिसमें सौन्दर्य की अनोखी अनुभूति ने मिलकर आइंस्टीन के सापेक्ष समय को कल्पान्त जीवी ब्रह्मा रूपी इकाई, समय-आवर्तन को कृष्ण का सुदर्शन चक्र और निरपेक्ष काल को नटराज शिव का ललित रूपाकार दे दिया है.

वस्तुतः हम भी समय को कभी-कभी जीतते रहे हैं, इसके परे जाते रहे हैं. तीव्र एकाग्रता, मन की तल्लीनता ही ध्यान की शुरूआती अवस्था होती है तब समय नहीं व्यापता. प्रेम में डूबे एक दूसरे को निहारते युगल, शिशु को दुलारती माता, अन्वेषण में तत्व चिन्तन करता वैज्ञानिक या ऋषि, कुदरत की या संस्कृति की ख़ूबसूरती को आत्मसात करता टूरिस्ट, और सृजन में तल्लीन कवि-लेखक, शिल्पज्ञ, संगीतज्ञ, साफ्टवेयर विशेषज्ञ ये सब किसी न किसी समय एकाध क्षण के लिए उस व्यापक समष्टि में अवस्थित हो जाते हैं जिसे आत्मतत्व भी कहते हैं जहाँ समय नहीं होता पर उनकी यह अनुभूति क्षणिक ही होती है, योगी, अवधूत या परमहंस की अनुभूति की तरह स्थायी भाव नहीं बन पाती.

यदि हम पूरी एकाग्रता से, मन के पूरे समर्पण से कोई कार्य करें तो हम अपने दैनिक कार्यों के बीच ही आनन्द की ऐसी अनुभूति को और विस्तार दे सकते हैं और हम भी समय के पार जा सकते हैं? प्रयत्न करके देखिए.

■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

ये ग्रामा यद्रण्यम् याः सभा अधि भूम्याम्
ये संग्रामाः समिन्तयस्तेषु चारु वदेम ते।५६।

तुम्हारे जो गाँव, वन
रणभूमि, परिषद, सभाएं
पृथिवी, सभी हों चारु, शुभ
वे प्रिय वचन बोलें परस्पर।

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य
आक्षियन् पृथिवीम् यादजायत
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा
वनस्पतीनाम् गृभिरोषधीनाम्।५७।

धूलि अश्वों के पगों से उड़ जहाँ पर
प्रीतिकर है मानवों को
भूमि सुखप्रद वास वह सबका
भुवन की अभिभाविका
संधारिका सब औषधी, सब वनस्पतियों की।

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः।५८।

हम कहें जो कुछ मधुर हो और हितकर
हम लखें जो कुछ सहायक हो
दीप्तिमय हों हम, हम हों ज्ञानमय
शोषकों का हम करें संक्षय।

शांतिवा सुरभिः स्योना कीलालोघ्नी पयस्वती
भूमिराधिम् ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह।५९।

शांति, सौरभ, सुख हमारी भूमि दे
अन्न जल की सदा होगी पूर्ति
ऐसा वह कहे।

यां वैच्छद्धाविषाम् विश्वकर्मांतरर्णये रजसि प्रविष्टाम्
भुजिष्ये पात्रम् निहितम् गुहा यदाविभोगे
अभवनमातृमद्भयः।६०।

धरा की अभ्यर्थना की कामना से भूमि तल में
निहित भोजन पात्र द्वारा
विश्वकर्मा अमरपुर से
मातृ भू के उपासकों के भोग के हित
निरंतर ही जगत में प्रतिदान करते हैं।

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधाम् पप्रथाना
यत् त ऊनं तत् त आ पूस्याति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।६१।

विश्व माता कामदा, संस्तुत्य
तुम हो अन्नदा
न्यूनता यदि कहीं कोई है
तो यज्ञ द्वारा प्रजापति ने आदि में परिपूर्ण करदी है

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभयम् संतु पृथिवि प्रसूताः
दीर्घम् न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बालिहृतः स्याम।६२।

भूमि सब उत्पन्न तुमसे स्वस्थ हों
यक्ष्मा हो दूर जीवन दीर्घ हो
ज्ञान हो हममें सदा हम सभी कुछ
करें अर्पित तुझे हे माता।

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्
भूमे मातर्नि दिवा कवे श्रियाम् मा धेहि भूत्याम्।६३।

भूमि माता हमें दो तुम बुद्धि शुभ कल्याणकारी
ज्ञात हो सबकुछ हमें, सब समय हे क्रांतदर्शिनि
भूति, श्री इस लोक में संप्राप्त हो।

क्रमशः...

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ ग़ज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

भगवद्गीता में हम वीर अर्जुन व ईश्वर के अवताररूपी श्रीकृष्ण के बीच हुए संवाद के रूप में सूक्ष्म दार्शिनिक सत्य पाते हैं। फिर हमारे पास योगवशिष्ठ है जहाँ ईश्वर के अवताररूपी श्रीराम और गुरु वशिष्ठ के बीच का संवाद है जिसमें सरल वाक्य-विन्यास व भगवद्गीता के स्पष्ट कथन का समावेश है। एक और कृति अष्टावक्र गीता है जो सूक्ष्म सत्य पर चिंतन स्वरूप है जहाँ हम राजा जनक और गुरु अष्टावक्र के बीच स्पष्ट वार्तालाप पाते हैं।

उपरोक्त सारी कृतियाँ चिंतन के उस उच्च स्तर तक ले जाती हैं जहाँ सिद्धि ब्रह्म याने चेतना से परिचय कराती है।

उक्त कृतियों की खूबी यह है कि भगवद्गीता में अर्जुन युवावस्था का, योगवशिष्ठ में श्रीराम बाल्यावस्था का और अष्टावक्र गीता में राजा जनक प्रौढ़ावस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह ये कृतियाँ जीवन की प्रत्येक अवस्था को आत्मसात् करती हुई एक समान सिद्धि तक ले जाती हैं।

चिंतनकला भी एक तरह का संवाद है जहाँ सत्य की खोज अंततः माया व भ्रम की गहरी परतों का उन्मूलन करती है ताकि मात्र सत् ही प्रकट होकर और असत् अलग से चिह्नित होकर शुद्ध चेतना से हमारे जीवन को देदीप्यमान कर सके। चिंतन के सारतत्व में निहित है स्वतंत्र व स्पष्ट संवाद जहाँ अर्जुन शरीर याने शून्य तथा ईश्वर आत्मा याने चेतना हैं। चिंतन के समय भ्रमित किन्तु विचारशील मन स्वतः की अंतरात्मा को संबोधित करता है और संवाद के आरंभ होने की प्रतीक्षा करता है। देखने, समझने व सोचने में सक्षम हमारा शरीर अपने सारे विचारों के मलबे को चिंतन की प्याली में ऊँड़ेलता है और अपने अंतः से हुए संवाद की ऊष्मा में मथ जाने का इंतजार करता है।

मैंने प्रयास किया है और उससे जो प्रकट हुआ है, वह मैं अपने पाठकों से साझा करूँ। अतः यहाँ प्रारंभ होती है वार्ता – एक संवाद जिसके एक तरफ देखने, समझने व सोचने में सक्षम मेरा मन और दूसरी ओर मेरा अंतः याने आत्मा जो मानवमन को शुद्ध चेतना की सिद्धि की ओर अग्रसर करने में कुछ हद तक सक्षम है। - ले.

Mind speaks

"What was I? Who am I? And what will I be?" are the first basic things that my body, the perceiver-feeler-thinker-entity wants to meditate. So let my soul, my inner self be my guide for I know not who am I in reality.

मन ने कहा :

'मैं क्या था? क्या हूँ? और क्या बनूँगा?' ये प्रथम बुनियादी बातें मेरी देह जो देखने परखने और समझने वाली है मनन करना चाहती है. अतः मेरी अन्तरात्मा मेरी मार्गदर्शक बने क्योंकि मैं नहीं जानता कि वास्तव में मैं क्या हूँ.

O my inner self! Due to ignorance and being caught in the web of Maya, I am full of doubts and illusions and therefore desire to know answer to these questions, for you alone are mine and you alone stand so close to me. Please help me to remove the layers of ignorance.

हे मेरी अन्तरात्मा, स्वतः की अज्ञानता के कारण और माया जाल में उलझे रहने की वजह से मैं अनेक शंका व भ्रमों से घिरा हुआ हूँ. और इसलिये इस प्रश्नों का उत्तर चाहता हूँ क्योंकि तुम ही मेरे अपने हो और मेरे इतने करीब हो. कृपया मेरी अज्ञानता की परतों को दूर करने में सहायता करो.

The inner self answers

Since both the mind and the soul are together in one form --- the body, I feel pleasure in answering your questions. For the one who is eager to clear the doubts arising due to illusions deserves to ward off ignorance and know all that is knowable.

अन्तरात्मा ने उत्तर दिया :

चूँकि मन व आत्मा दोनों एक ही साकार रूप याने एक शरीर में हैं, मुझे प्रश्न का उत्तर देने में प्रसन्नता हो रही है. क्योंकि जो भ्रम से उत्पन्न शंकाओं को दूर करने को उत्सुक है वह अज्ञानता को दूर करने तथा जानने योग्य सारी बातें जानने के योग्य है.

First of all know that the inner self and the perceiver-feeler-thinker body is no separate entity for in meditation they are complimentary to each other and in meditation they have to merge into one.

सर्वप्रथम ज्ञात हो कि अन्तरात्मा और देखने परखने और समझने वाली यह देह अलग-अलग नहीं हैं क्योंकि मनन में ये एक-दूसरे के पूरक हैं और मनन में इन दोनों को एक-दूसरे में मिल जाना होता है.

Know me first and then assess your self to know 'who are you?' for without the knowledge of the contents one knows not whether a medicinal capsule is harmful or remedial.

पहले मुझे जानो और तब खुद का आंकलन करो क्योंकि दवाई की गोली में क्या है यह जाने बिना पता नहीं चलता कि वह नुकसानदेह है या लाभप्रद.

I am the part of that absolute fullness which remains full even when fullness is taken out of its fullness.

मैं उस परम पूर्णता का अंश हूँ जिसकी पूर्णता में से पूर्ण निकाल दिये जाने पर भी उसकी पूर्णता बनी रहती है.

Even a minute part of such fullness retains the extraordinary quality of remaining full even when fullness is taken out of its fullness.

पूर्ण निकाल दिये जाने पर भी अपनी पूर्णता बनाये रखने का यह अद्‌भुत गुण उस अंश में बना रहता है जो चाहे वह उस पूर्णता का एक छोटा-सा अंश ही क्यों न हो.

Hence I being the minutest part of that absolute fullness am the absolute --- full with rigors of pure consciousness.

अतः इस शुद्ध पूर्णता का मात्र एक छोटा-सा अंश होकर भी मैं पूर्ण हूँ जिसमें शुद्ध सचेतना (ब्रह्म) की शक्ति है.

So I am the very embodiment of pure consciousness --- an awaken state of selfhood all through my spiritual pilgrimage.

अतः मैं शुद्ध सचेतना (ब्रह्म) का मूर्तरूप हूँ — अपनी संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा में स्व-सजगता के साथ.

So I am the abode of consciousness where the atmosphere is forever charged with supreme bliss and where peace becomes the illuminator of mind.

अतः मैं सचेतना (ब्रह्म) का निवास हूँ जहाँ का वातावरण सदा सर्वश्रेष्ठ आनंद से भरा होता है और जहाँ की शान्ति मन को प्रकाशित करती रहती है.

I am the self --- the formless reality that is capable of taking numerous forms and melt any form into formless.

मैं आत्मा हूँ — एक निराकार सत्य जो अनेक आकार लेने में सक्षम है और किसी भी साकार को निराकार करने में समर्थ.

Yet I am neither a doer nor even the enjoyer of all those actions which propagate enjoyment and in which my involvement exists.

मैं न तो कर्ता हूँ और न ही आनंद का अनुभव करता हूँ उन सब कर्मों का जो आनंद देने वाले हैं और जिनके बनने में मेरा योगदान है.

I say again that I am not the doer --- I am also not the enjoyer or sufferer. You are the thinker and performer. You think of the pairs of opposites and analyse your doings as good or bad.

मैं पुनः कहता हूँ कि मैं कर्ता नहीं हूँ — मैं आनंद व पीड़ा का अनुभव भी नहीं करता हूँ. तुम सोचनेवाले व करनेवाले हो. तुम दो विपरीतों (द्वैत) के विषय में सोचते हो और अपने कर्म के अच्छे व बुरे होने का आंकलन करते हो.

For I am free from the conflicts of any two kinds of opposites that I create.

क्योंकि मैं किसी भी तरह के मेरे द्वारा रचित दो विपरीतों (द्वैत) की झंझट में नहीं पड़ता.

Virtues and vices, pains and pleasures, light and darkness, happiness and sorrow all are like the two faces of a coin without which coin has no value and sense.

पाप और पुण्य, पीड़ा व आनंद, प्रकाश व अंधकार, सुख व दुख सभी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिनके बिना सिक्के का कोई अर्थ नहीं होता व कोई कीमत नहीं होती.

All that is supreme is formless and have to create two opposites to show its effect and existence, for light in the absence of shadow is only a glare and in effect signifies nothing.

जो भी श्रेष्ठ है वह निराकार है और उसे अपने अस्तित्व व प्रभाव को जताने दो विपरीतों की रचना करनी होती है क्योंकि प्रकाश साये की अनुपस्थिति में मात्र चमक-सा होता है और उसके प्रभाव का कोई अर्थ नहीं होता.

The conflicts of good and bad, the struggles for pleasures and pains, the oddities of happiness and sorrow etc. germinate in the mind and their growth is responsible for the evolution of mind.

अच्छाई और बुराई के संघर्ष, पीड़ा व आनंद के द्वंद, सुख और दुख की झंझटें आदि मन में पनपती हैं तथा इनकी उत्पत्ति ही मन के विकास के लिये जिम्मेदार हैं.

It is the evolution of mind that directs instinctively and intuitionally to probe in to the reality and know all that is knowable.

यह मन का विकास है जो अंतःप्रेरणा व अंतर्ज्ञान से सत्यता को खोजने और जो कुछ जानने योग्य है उसे जानने के लिये उद्धृत कराता है.

The curiosity to acquire knowledge is itself the liberation from ignorance. The mind attains purification and the inner self -- the soul experiences the onset of bliss. The attainment of bliss is the sole aim of life.

ज्ञान प्राप्ति की उत्कंठा ही अज्ञानता से मुक्ति है. इससे मन परिष्कृत होता है और अंतरात्मा में आनंद का प्रादुर्भाव होता है. आनंद की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है.

In order to know what you are, you have to understand what is your inner self. It is the inner self that shall remain with you forever and that alone shall be your guide, mentor and your companion forever.

यह जानने के लिये कि तुम क्या हो, तुम्हें समझना होगा कि तुम्हारे अंतःकरण में क्या है. यह अंतरात्मा ही तुम्हारे साथ सदा रहेगी और सिर्फ यही सदा के लिये तुम्हारा पथप्रदर्शक, गुरू व तुम्हारा साथी बनकर रहेगी.

Because of my absolute fullness, you are also full, but you have covered the light of the burning fire with the ashes.

मेरी पूर्णता के कारण तुम भी पूर्ण हो. परन्तु तुमने राख का आवरण धारण कर प्रज्ज्वलित अंगारे की रोशनी को छिपा दिया है.■

क्रमशः...

Who Are You Calling Old?

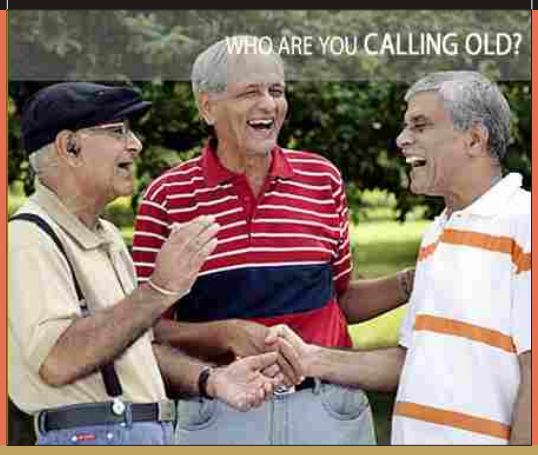

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.

सम्पर्क : om@ramacharit.org

कौन बनेगा रामभक्त

निम्न प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत श्री रामचरितमानस के आधार पर दीजिये.
सही उत्तर अगले अंक में प्रकाशित होंगे.

१. जब राम को वनबास दिया गया, तब भरत कहाँ थे ?
   अ) ससुराल
   ब) मामा के घर
   स) लंका
   द) मथुरा

२. ब्रह्मा जी के कितने नेत्र हैं ?
   अ) २
   ब) ४
   स) ८
   द) १,०००

३. कुम्भकर्ण का नाम उसके शरीर के किस अंग से पड़ा ?
   अ) आँखें
   ब) नाखून
   स) गला
   द) कान

४. विन्ध्याचल किसका नाम है ?
   अ) एक अप्सरा
   ब) एक सरोवर
   स) एक पर्वत
   द) एक वृक्ष

५. 'भानुकलनाथ' शब्द किसके लिए है ?
   अ) इंद्र
   ब) राम
   स) सूर्यदेव
   द) रावण

६. स्वर्ण मृग का रूप किसने धारण किया ?
   अ) रावण
   ब) लक्ष्मण
   स) मारीच
   द) सुबाहु

७. इन घटनाओं में किनका क्रम सही है ?
   अ) राम विवाह-सीता हरण-अहिल्या उद्धार
   ब) सीता हरण-अहिल्या उद्धार-राम विवाह
   स) अहिल्या उद्धार-राम विवाह-सीता हरण
   द) अहिल्या उद्धार-सीता हरण-राम विवाह

८. 'गरल' शब्द का क्या अर्थ है ?
   अ) विष
   ब) अमृत
   स) गला हुआ
   द) गहरा

९. नारद किनके पुत्र माने जाते हैं ?
   अ) राम
   ब) शिव
   स) ब्रह्मा
   द) गणेश

१०. 'अजर अमर गुननिधि सुत होहू' यह शब्द किसने कहे ?
   अ) राम
   ब) सीता
   स) सुमित्रा
   द) विष्णु.

प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

जनवरी २०१३ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :

१. ब, २. स, ३. ब, ४. ब, ५. द, ६. ब, ७. द, ८. स, ९. स, १०.अ

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

पंचतंत्र

बिना अकल के नकल

विष्णु शर्मा ने कहा, 'सुनते हैं दक्षिण देश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर था।' राजकुमारों के चेहरे पर चमक आ गई। चलो, देस दक्षिण का ही सही, महिलारोप्य नाम के इस मशहूर पर मनहूस नगर से बाहर निकलने का मौका तो मिला।

विष्णु शर्मा का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। वह उसी रौ में कहते रहे- उस नगर में मणिभद्र नाम का एक सेठ रहता था। भाग्य का कुछ ऐसा चक्कर चला कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए जो कुछ उचित समझा जाता है वह सब नियम से करते रहने पर भी उसका दिवाला पिट गया। कहां तो उसने वैभव के दिन देखे थे और कहां दुर्दिन का यह दौर। जहां नौकर-चाकर उसके सामने हाथ बांधे खड़े रहते थे वहां अब उसे दूसरों के ताने सुने पड़ते थे और तकाजे करने वालों के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होना पड़ता था। अपनी इस अपमान भरी जिंदगी से वह तंग आ चुका था। वह एक ही बात सोचता रहता था कि गरीबी से बुरी कोई चीज नहीं। उसने इससे पहले भी गरीब लोगों को जी तोड़ मेहनत के बाद भी गरीब बनकर जीते देखा था। तब यह बात उसकी समझ में नहीं आई थी। अब समझ में आने लगी थी। वह गरीबी के बारे में अमीरी से गिरकर नए-नए गरीबदास बनने वाले, और गरीबी की ताजा-ताजा चोट खाने वाले द्वारा

> जिसके पास दौलत नहीं है उसके पास न तो शील ठहरता है, न ही सफाई, न क्षमा, न चतुराई, न मधुरता, न कुलीनता।

सोची जाने वाली जितनी भी दर्दनाक बातें हो सकती थीं, बिना किसी रोक-टोक के सोचता जा रहा था। उसने सोचते हुए सोचा कि जिसके पास दौलत नहीं है उसके पास न तो शील ठहरता है, न ही सफाई, न क्षमा, न चतुराई, न मधुरता, न कुलीनता। इस कुलीनता का मामला तो इतना टेढ़ा है कि जो लोग एक धनी अपजात को इसलिए नीचा समझते हैं कि धनी हुआ तो क्या हुआ, है तो छोटी जाति का ही, वे ही अपनी जाति के गरीब आदमी को देखकर उस पर लानत भेजते हुए कहते हैं, जाति लेकर क्या चाटना है। खाने का ठिकाना नहीं, फन्ने खां बना फिरता है। उसने कुछ सुर का ध्यान रखते हुए और कुछ बेसुरा होने का खतरा उठाते हुए देवभाषा में उसी बात को प्रकट कहा जिसे वह जनभाषा में जाने कब से सोचता आ रहा था।

उसके दुर्भाग्य से उसके जमाने में न तो लाल झंडा था, न लाल झंडा पार्टी, न ही जो हक है हमारा हम लेंगे, उससे न जरा भी कम लेंगे का नारा। इसलिए उसे सोचने और पछताने का सारा काम अकेले करना पड़ रहा था। उसने ग्लानि से भरकर कहा, 'मान हो या दर्प, विज्ञान हो या सुबुद्धि, आदमी

के गरीब होते ही सभी नष्ट हो जाते हैं।' उसने रोने-बिलखने की उस घड़ी में भी नहीं कहा कि जिनके पास ये गुण पहले से होते हैं उनके ये गुण गरीबी आते ही नष्ट हो जाते हैं, तो भला जिनको गरीबी के कारण इनके पाने का भी मौका नहीं मिला, उनमें अपने आप ये कैसे आ सकते हैं।

सेठ का ध्यान विद्वानों की ओर पहले भी गया होगा पर इस तरह नहीं जिस तरह अब जा रहा था। वह सोचने लगा, इतना ज्ञान रहते हुए पेट भरने की चिंता में आटा-दाल जुटाते हुए विद्वानों की बुद्धि का क्या कबाड़ा होता है इसे क्या कोई

> उसने उठाई लाठी और उस भिक्षु के सिर पर दे मारा। वह भिक्षु चोट लगते ही भूमि पर गिर पड़ा और सोने की मूर्ति में बदल गया। सेठ ने चुपके से उस सन्यासी की लाश को अपने घर के भीतर रखवा दिया।

समझ सकता है। सच बात तो यह है कि दिमाग किसी का कितना भी तेज क्यों न हो, नोन-तेल-लकड़ी, रोटी-दाल की फिक्र हो तो सारी प्रतिभा इसी जुगाड़ करते नष्ट हो जाती है।

जिसके पास धन नहीं है उसके पास यदि बहुत सुंदर भवन हो तो भी वह भवन बिना तारों के आकाश की तरह सूना, सूखे तालाब की तरह उदास और श्मशान की तरह डरावना लगता है। धन न हो तो आदमी तीन कौड़ी का हो जाता है। लोग उसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं। गरीब की जिंदगी पानी के बुलबुले जैसी तुच्छ होती है। जैसे कोई यह गिनती नहीं करने जाता कि कितने बुलबुला पैदा हुए कितने फूट कर फिर पानी में मिल गए, उसी तरह कोई इनके जीने-मरने की भी चिंता नहीं करता। जिस आदमी के पास दौलत होती है उसकी लोग इस बात की चिंता किए बिना कि वह कुलीन है या नहीं, गुणी है या नहीं, सज्जन है या नहीं, कल्पतरु की तरह सेवा करते हैं, परंतु निर्धन व्यक्ति में ये सारे गुण हों तो भी उसकी अनदेखी की जाती है।

यहां तक कि गरीबी आ जाए तो पहले की नेकी और पुण्य भी बेकार हो जाते हैं। औरों की तो बात ही अलग है, कुलीन और विद्वान लोग भी जिसके पास जब तक पैसा होता है, उसकी, उस समय, गुलामी करने को तैयार हो जाते हैं।

उसका मन इसी तरह की बातें सोचता हुआ इतना घबराने लगा कि एक बार को तो उसके जी में आया कि वह अनशन करके अपने प्राण ही दे दे। कंगाली में रहकर जीने से क्या लाभ!

वह इसी ऊहापोह में भटकता रहा कि उसे नींद आ गई और वह सो गया। सोते समय उसने एक सपना देखा कि उसके सामने जैन भिक्षुओं जैसा वेश बनाए कोई खड़ा है और कह रहा है, 'सेठ, तुम इस तरह निराश न होओ। न तो तुम्हें जान देने की जरूरत है, न ही संन्यास लेने की। मैं तुम्हारे पूर्वजों द्वारा पैदा की गई पद्म नामक निधि हूं। कल प्रातः मैं तुम्हारे सामने इसी वेश में आऊंगा। तुम मेरे सिर पर लाठी से प्रहार करना। इस प्रकार से मैं सोने में बदल जाऊंगा और इस तरह तुम्हारी दौलत कभी खत्म ही नहीं होगी।'

अगले दिन उसकी नींद खुली तो वह अपने सपने पर विचार करे लगा। उसे कभी तो लगता वह सपना सचमुच सच सिद्ध होगा और कभी उसे इस पर हंसी आती कि भला ऐसा भी कभी हुआ है। उसने फिर सोचा कि वह दिन-रात धन के विषय में ही सोचा करता है। जब कोई किसी बात को लेकर लगातार एक ही विचार में डूबा रहता है तो उसे सपने भी उसके बारे में ही आते हैं। इसीलिए रोगियों, दुखियारों और चिंता करने वाले लोगों, कामियों और जन्मादियों के देखते हुए सपने झूठ ही हुआ करते हैं।

वह अभी इसी तरह ऊंच-नीच सोच रहा था कि उसे एक नाई आता दिखाई दे गया। इस नाई को सेठ की पत्नी ने नाखून आदि काटने के लिए बुलवाया था। ठीक इसी समय जैसा उसने सपने में देखा था वैसा ही एक जैन भिक्षु भी प्रकट हो गया। भिक्षु को देखकर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उठाई लाठी और उस भिक्षु के सिर पर दे मारा। वह भिक्षु चोट लगते ही भूमि पर गिर पड़ा और सोने की मूर्ति में बदल गया। सेठ ने चुपके से उस सन्यासी की लाश को अपने घर के भीतर रखवा दिया। फिर उसने उस नाई को मनाने के लिए कुछ गहने देकर कहा, भाई ये गहने तुम रख लो पर इस बात को किसी दूसरे से न कहना।

नाई अपने घर गया तो सोचने लगा कि हो न हो ये जितने भी दिगंबर साधु हैं सभी इसी तरह के हैं। इनके सिर पर डंडा मारते ही ये सोने की मूर्ति में बदल जाते हैं। यह बात है तो कल सुबह मैं ढेर सारे दिगंबर साधुओं को बुलाकर उनके सिर पर डंडे से प्रहार करूंगा और इससे मेरे पास बहुत सारा सोना हो जाएगा। यह सोचते हुए उसने जैसे-तैसे अपनी रात काटी।

दूसरे दिन उसने एक बड़ी सी लाठी तैयार करके रख दी और दिगंबर साधुओं के मठ में गया। वहां उसने भगवान जिन की तीन बार परिक्रमा की और फिर बड़ी नम्रता से घुटनों के बल बैठ गया और अपने अंगोछे को मुंह पर लगाकर उनकी स्तुति करने लगा। स्तुति करने के बाद वह नाई प्रधान भिक्षु के पास गया और उनके सामने भी उसी तरह घुटने के बल बैठ गया और नम्रता से बोला, 'आप को नमस्कार है। मैं आप की वंदना करता हूं।'

उस भिक्षु ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुम्हारी धर्म भावना और बढ़े। फिर उन्होंने जो माला पहन रखी थी उसे निकालकर उसे दे दी और समझाने लगे कि उसे व्रत और उपवास नियम से करते रहना चाहिए।'

आशीर्वाद पाकर उसने अपने अंगोछे को गले में लपेटकर कर उनसे प्रार्थना की कि आज का भोजन वह सभी भिक्षुओं के साथ उसके ही घर पर करें।

उसकी बात सुनकर भिक्षु ने कहा, 'आप तो धर्मज्ञ हैं फिर आप ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं? निमंत्रण पाकर तो ब्राह्मण भोजन करने जाते हैं। हम तो भोजन का समय होने पर किसी ऐसे व्यक्ति के घर स्वयं घूमते हुए चले जाते हैं, जिसके मन में धर्मभावना हो। जब वह बहुत आग्रह करता है तो हम केवल उतना सा अन्न ग्रहण कर लेते हैं जिससे जीवन की रक्षा हो सके। बस। आप चुपचाप यहां से चले जाएं और आगे कभी इस तरह की बात न करें।'

नाई ने कहा, 'हम तो आपके नियमों को जानते ही हैं पर आप लोगों को तो बहुत से लोग अपने यहां बुलाते रहते हैं। मैंने तो अपने घर में ग्रंथ बांधने के लिए बहुत कीमती कपड़े जुटा रखे हैं। ग्रंथ लिखवाने के लिए लेखक को देने के लिए धन भी जुटा रखा है। आप को यदि यह ठीक लगे तो कृपा करके मेरे साथ यहां पधारे।'

यह कहकर नाई अपने घर चला गया। उसने खैर की लकड़ी की एक लाठी तैयार की और डेढ़ पहर दिन चिढ़ जाने पर घर के दोनों किवाड़ बंद करके फिर मठ के द्वार पर पहुंच गया। जब भिक्षु भिक्षा के लिए बाहर निकलने लगे तो उनको बहुत मिन्नत करके वह अपने घर ले गया। भिक्षुओं को यह सोच कर कुछ लोभ आ गया कि उसने अपने घर पर वस्त्र और पैसे का भी जुगाड़ कर रखा था। केवल वे ही श्रावक उसके साथ नहीं गए जो नियम के पक्के थे। यह भी कितनी विचित्र बात है कि जो लोग धन-दौलत, घर परिवार सभी को छोड़कर सन्यास ले लेते हैं, जिनके त्याग का यह हाल है कि वे अपने शरीर पर वस्त्र तक नहीं धारण करते, नंगे ही रहते हैं और सीधे हाथों की अंजुली बनाकर उसमें ही जो कुछ आ जाता है उसे खाकर संतुष्ट हो जाते हैं, उन त्यागी जनों में भी

> *बुढ़ापा आने पर केश पक जाते हैं, दांत गिर जाते हैं, आंखें और कान तक कमजोर पड़ जाते हैं पर अकेली तृष्णा ऐसी है जो अधिक जवान होती जाती है।*

तृष्णा बनी रह जाती है और वे इसके चक्कर में आ ही जाते हैं। बुढ़ापा आने पर केश पक जाते हैं, दांत गिर जाते हैं, आंखें और कान तक कमजोर पड़ जाते हैं पर अकेली तृष्णा ऐसी है जो अधिक जवान होती जाती है।

नाई ने भिक्षुओं को घर के भीतर ले जाकर दरवाजा बंद कर लिया। अब वह लाठी से उनके सिर पर प्रहार करने लगा। उसकी लाठी की चोट से कुछ के तो सिर फट गए, एक दो मर गए बाकी भागते हुए जोर-जोर से चिल्लाने लगे। उन्होंने इतना हल्ला मचाया कि उसकी आवाज नगर के कोतवाल के कानों में भी पड़ गई। कोतवाल ने तुरंत सिपाहियों को हुक्म दिया, 'जल्दी दौड़ो। देखो यह क्या शोर मच रहा है? इस नगर पर क्या आपदा आ गई?'

सिपाही दौड़े-भागे और घटना स्थल पर पहुंचे। देखा तो हैरान रह गए। ऐसा न उन्होंने देखा था न सुना था। पूछने पर भिक्षुओं ने रोते-धोते आप बीती सुना दी। अब उन्होंने नाई को पकड़कर बांध लिया, भिक्षुओं को साथ लिया और धर्माधिकारियों या न्यायाधीशों के पास पहुंचे। न्यायाधीशों ने नाई से पूछा 'नाई, तुमने इतना बड़ा कुकर्म क्यों किया?'

नाई ने कहा, 'मैं क्या करता। मैंने तो सेठ मणिभद्र के यहां इसी तरह की घटना घटते देखी थी।' अब उसने मणिभद्र के यहां जो कुछ देखा था उसे कह सुनाया।

धर्माधिकारी ने मणिभद्र को बुलवाया। उसकी बात सुनकर न्यायाधीशों ने कहा, 'यह दुष्ट नाई बिना जांचे परखे ही कुछ भी कर सकता है। इसे सूली पर चढ़ा दो।'

नाई के सूली पर चढ़ाए जाने के बाद न्यायाधीशों ने कहा, 'इस नाई की तरह किसी को भी बिना अच्छी तरह देखे, बिना अच्छी तरह जाने, बिना अच्छी तरह सुने, बिना अच्छी तरह जांचे कोई काम नहीं करना चाहिए।'

फिर उन्होंने कहा, 'कोई भी काम क्यों न हो, उसे बिना जांचे नहीं करना चाहि। कुछ करने से पहले अच्छी तरह जांच परख कर लेनी चाहिए नहीं तो आदमी को बाद में उसी तरह पछतावा होता है जैसे नेवले को मारने के बाद ब्राह्मणी को हुआ था।"

मणिभद्र ने पूछा, 'ब्राह्मणी ने नेवले की जान क्यों ली?'

न्यायाधीशों में से एक ने उस घटना को बयान कर दिया।■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

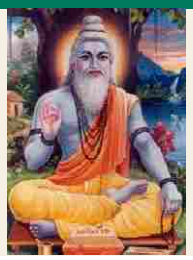

दुर्योधन का कुचक्र

द्रोणाचार्य के सेनापतित्व ग्रहण करने के बाद दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन, तीनों ने आपस में सलाह करके एक योजना बनाई। उसके अनुसार दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला- 'आचार्य! किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ करके हमारे हवाले कर सकें तो बड़ा ही उत्तम हो! इससे अधिक हम आपसे कुछ नहीं चाहते। यदि इस एक कार्य को आप सफलतापूर्वक कर दें तो फिर मैं और मेरे साथी संतोष मान लेंगे।'

यह सुनकर द्रोणाचार्य एकदम खुश हो उठे। पांडवों को मारना उनको भी प्रिय न था। यद्यपि कर्तव्य से प्रेरित होकर वह युद्ध में शरीक हुए थे, फिर भी उनके मन में यही संघर्ष चल रहा था कि पाण्डु-पुत्रों को विशेषकर युधिष्ठिर को मारना अधर्म तो नहीं है? इस कारण अब दुर्योधन की यह सूचना पाकर वह बड़े खुश हुए।

बोले- 'दुर्योधन! तुम्हारी क्या यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणों की रक्षा हो जाये? तुम्हारा कल्याण हो! जब तुम्हीं ने यह कह दिया कि धर्मपुत्र के प्राण न लिये जायें तो फिर इसमें शक ही क्या हो सकता है कि युधिष्ठिर का कोई शत्रु नहीं है। लोगों ने अजातशत्रु की जो उपाधि उसको दी है, तुमने उसे आज सार्थक कर दिया। जब तुम स्वयं यह अनुरोध करने लगे हो कि युधिष्ठिर का वध न किया जाये, उसे जीवित ही पकड़ लिया जाये तो इसमें तो युधिष्ठिर का यश दस गुना बढ़ जाता है। धन्य है युधिष्ठिर को, जिसका कोई शत्रु नहीं!'

यह कह आचार्य कुछ देर सोचते रहे और फिर बोले- 'बेटा! मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा उद्देश्य यही है कि पांडवों को आधा राज्य देकर उनसे संधि कर लें, नहीं तो युधिष्ठिर को जीता पकड़ने की बात तुम क्यों करते?' यह कहते-कहते आचार्य द्रोण बहुत ही गदगद हो उठे और सोचने लगे-

'बुद्धिमान धर्मपुत्र का जन्म सफल है, कुंतीनंदन बड़भागी है, जिसने अपने शील स्वभाव से सबको प्रभावित कर दिया है।' वह बार-बार यही सोचने लगे और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम संतोष का अनुभव करने लगे। फिर यह सोचकर कि दुर्योधन के मन में अपने भाइयों के प्रति अभी तक स्नेह है, द्रोण और भी प्रसन्न हुए।

किन्तु दुर्योधन का उद्देश्य तो कुछ और ही था। उसके हृदय में वैर-भाव और कुकर्म की इच्छा ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी- वह तनिक भी कम नहीं हुई थी। जब द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीता पकड़ने की बात मान ली तो ऐसा करने का अपना उद्देश्य भी आचार्य को बताया।

दुर्योधन को अब तक यह विदित हो चुका था कि युधिष्ठिर को मार डालने से न तो युद्ध बंद होगा, न पांडवों का क्रोध ही कम होगा, उल्टे पांडव और भी अधिक उत्तेजित हो जायेंगे और तब तक लड़ेंगे, जब तक कि सारे सैनिक खत्म न हो जायें। दुर्योधन को यह भी पता चल गया कि हार उसी की होगी और जीत पांडवों की होगी। यदि ऐसा न होकर दोनों तरफ के योद्धाओं का नाश हो गया तो भी कृष्ण तो मरेंगे नहीं, न ही द्रौपदी जैसी स्त्रियां ही मरेंगी। कृष्ण जीवित रहे तो यह भी निश्चित है कि राज्य द्रौपदी या कुंती के हाथों में चला जायेगा। अतः युधिष्ठिर का वध करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। उल्टे, यदि युधिष्ठिर को जीता ही पकड़ लिया जाये तो युद्ध भी शीघ्र ही बंद हो जायेगा और जीत भी कौरवों की होगी। थोड़ा राज्य युधिष्ठिर को देने का बहाना करना होगा, सो वह कर देंगे और बाद में फिर जुआ खेलकर सहज ही मैं उसे वापस छीन भी लेंगे। क्षत्रियोचित धर्म मानने वाले और बात के पक्के युधिष्ठिर को जुआ खेलकर फिर वन में भेजा जा सकता है। इधर दस दिन के युद्ध में दुर्योधन को यह भी मालूम हो चुका था कि लड़ने से कुल की तबाही ही होने वाली है, सफल होना शायद संभव नहीं है। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाने का अनुरोध किया था।

लेकिन द्रोण को जब दुर्योधन के असली उद्देश्य का पता लगा तो वह बहुत उदास हो गये। सोचने लगे कि झूठे ही वह कल्पना करने लगे थे कि दुर्योधन का दिल अच्छा है। इससे उसके मन में दुर्योधन के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई। वह

दुर्योधन को अब तक यह विदित हो चुका था कि युधिष्ठिर को मार डालने से न तो युद्ध बंद होगा, न पांडवों का क्रोध ही कम होगा, उल्टे पांडव और भी अधिक उत्तेजित हो जायेंगे और तब तक लड़ेंगे, जब तक कि सारे सैनिक खत्म न हो जायें।

मन-ही-मन दुर्योधन को कोसने लगे, परन्तु फिर भी यह सोचकर उन्होंने संतोष कर लिया कि युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई न कोई बहाना तो मिला ही।

इधर पांडवों को जासूसों द्वारा यह मालूम हो गया कि आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का निश्चय किया है। पांडव तो द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता एवं शस्त्र-विद्या के अनुपम ज्ञान से भली-भांति परिचित ही थे। अतः जब सुना कि द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने का निश्चय ही नहीं किया, बल्कि प्रतिज्ञा भी की है तो वे भी भयभीत हो गये। सबको यही चिंता रहने लगी कि किसी भी तरह युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया जाये।

इस कारण पांडव-सेना की व्यूह-रचना इस तरह से की गई कि जिससे युधिष्ठिर के चारों ओर उनकी सुरक्षा के लिये काफी सेना मुस्तैदी से रह सके। सेना का एक बहुत बड़ा भाग युधिष्ठिर की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया।

द्रोण के सेनापतित्व में युद्ध प्रारंभ हुआ। पहले दिन के संग्राम में उन्होंने अपने पराक्रम का काफी परिचय दिया। जैसे आग किसी सूखे वन को जलाती हुई फैलती है, वैसे ही पांडव-सेना को जलाते हुए आचार्य द्रोण चक्कर काटते रहे। किसी को पता भी नहीं चला कि द्रोण है किस मोर्चे पर। ऐसी फुर्ती के साथ इधर-उधर रथ चलाते, बाण बरसाते और सर्वनाश मचाते रहे कि पांडव-सेना को भ्रम होने लगा कि कहीं द्रोण अनेक तो नहीं हो गये।

पांडव सेना का व्यूह उस मोर्चे पर टूट गया जिस पर सेनापति धृष्टद्युम्न था और महारथियों में घोर द्वंद्व छिड़ गया। माया-युद्ध का निपुण शुकनि सहदेव से युद्ध करने लगा। जब उनके रथ टूट गये तो दोनों वीर रथ से उतर पड़े और गदा लेकर एक-दूसरे से ऐसे टकराये, मानो दो पहाड़ जीवित होकर भिड़ गये हों।

भीमसेन और विवशिति में जो युद्ध हुआ, उसमें दोनों के रथ टूट-फूट गये। शल्य ने अपने भानजे नकुल को बहुत सताया। नकुल को इससे बड़ा क्रोध चढ़ा। उसने मामा के रथ की ध्वजा और छतरी काटकर गिरा दी और विजय का शंख बजा दिया। दूसरी ओर कृपाचार्य धृष्टकेतु पर टूट पड़े और उसको दूर तक खदेड़ दिया। सात्यकि और कृतवर्मा में भी भयानक युद्ध हुआ।

विराटराज कर्ण से जा भिड़े। सदा की भांति अभिमन्यु ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय दिया। उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य आदि चारों महारथियों का मुकाबला किया और चारों को परास्त कर दिया।

इसके बाद भीम और शल्य में अचानक गदा युद्ध छिड़ा। अन्त में भीम ने शल्य को बुरी तरह हराया और उनको युद्ध

> *अर्जुन के गांडीव धनुष से बाणों की ऐसी अविरल बौछार छूट रही थी कि कोई देख ही नहीं पाता था कि कब बाण धनुष पर चढ़ते और कब चलते कुरुक्षेत्र का आकाश बाणों से छा गया।*

क्षेत्र से हटना पड़ा। यह देख कौरव सेना का साहस डगमगाने लगा। उस पर पांडव-सेना ने कौरव-सेना पर जोरों का हमला कर दिया। इससे कौरव-सेना में खलबली मच गई।

द्रोण ने जब यह देखा तो अपनी सेना का हौसला बढ़ाने के लिये अपने सारथी को आज्ञा दी कि रथ को उस ओर ले चलो, जिधर युधिष्ठिर युद्ध कर रहे हों। द्रोण के सुनहरे रथ के आगे सिंधु देश के चार सुन्दर और फुर्तीले घोड़े जुते हुए थे। द्रोण का आज्ञा देना था कि घोड़े हवा से बातें करते हुए अपने रथ को युधिष्ठिर के रथ की ओर ले दौड़े। आचार्य के रथ को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर ने आचार्य पर बाज के पर लगे तीखे बाण चलाये, किन्तु आचार्य उनसे जरा भी विचलित न हुए। उल्टे धर्मराज पर उन्होंने कई बार चलाये और उनका धनुष काटकर गिरा दिया। युधिष्ठिर संभले, इससे पहले ही द्रोणाचार्य वेग से उनके निकट जा पहुंचे। धृष्टद्युम्न ने हजार चेष्टा की परन्तु वह द्रोण को नहीं रोक सके। उनका प्रचंड वेग किसी के रोके नहीं रुकता था।

'युधिष्ठिर पकड़े गये! युधिष्ठिर पकड़े गये!' की चिल्लाहट से सारा कुरुक्षेत्र गूंज उठा।

इतने ही में एकाएक न जाने कहां से अर्जुन उधर आ पहुंचा। रक्त की नदी को पार करता, हड्डियों के पहाड़ों को लांघता और धरती को कांपता हुआ अर्जुन का रथ वहां जा खड़ा हुआ। देखते ही द्रोणाचार्य जरा देकर के लिये तो सन्न से रह गये।

और अर्जुन के गांडीव धनुष से बाणों की ऐसी अविरल बौछार छूट रही थी कि कोई देख ही नहीं पाता था कि कब बाण धनुष पर चढ़ते और कब चलते कुरुक्षेत्र का आकाश बाणों से छा गया और इस कारण सारे मैदान अंधकार-सा छा गया।

अर्जुन के हमले के कारण द्रोणाचार्य को पीछे हटना पड़ा। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का उनका प्रयत्न विफल हो गया और संध्या होते-होते उस दिन का युद्ध भी बंद हो गया। कौरव-सेना में भय छा गया। पांडव-सेना के वीर शान से अपने-अपने शिविर को लौट चले। सैन्य-समूह के पीछे-पीछे चलते हुए कृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में जा पहुंचे।■

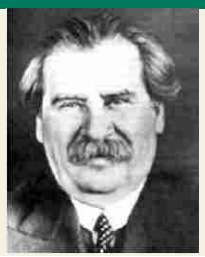

मोरित्स जिग्मोंद

२९ जून १८७९ को पूर्वी हंगरी के तिसाचेचै गाँव में जन्म. प्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानीकार. वे हंगरी के आरंभिक महत्वपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं. रचनाओं का अनुवाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में हुआ. किसान जीवन और गरीबी पर गहन संवेदना के साथ लिखते हैं. रचनाओं में वे गाँव का सच और हंगेरियन समाज का विस्तृत और सूक्ष्म चित्र देते हैं. शहरी जीवन और सर्वहारा वर्ग उनकी बाद की कृतियों में अंकित हुआ. उनकी भाषा हंगरी के जनजीवन और समाज से जुड़ी जीवंत भाषा है. वे बोलचाल की भाषा को प्राथमिकता देते हैं, इसलिए उनकी कहानियों में अपनी भाषा के ठेठ शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है. ४ सितम्बर १९४२ को पक्षाघात के बाद मृत्यु.

हंगेरियन से हिन्दी अनुवाद इंदु मदान

अनुवादिका दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में अंगरेजी की प्राध्यापिका हैं

सात पैसे

विधि ने अच्छा विधान बनाया है कि निर्धन व्यक्ति भी खुल के हंस सकता है. झोंपड़ी में से केवल दुःख-दर्द की पुकार ही नहीं, बल्कि हंसी के फव्वारे भी सुनाई देते हैं. और यह भी सच है कि निर्धन व्यक्ति कई बार तब भी हंसता है जब उसको शायद रोना चाहिए था.

इस संसार को मैं अच्छी तरह जानता हूँ. शोओशोक की पीढ़ी ने जिसमें मेरे पिता भी शामिल हैं, अधिक-से-अधिक मुसीबत के हालात में जीना सीख लिया था. उस जमाने में मेरे पिता एक कारखाने में कच्ची नौकरी पर थे. उस वक्त बिताए गए समय पर न उन्हें गर्व है, न किसी और को, मगर यह वास्तविकता है.

और यह भी सच है कि मैं अपनी आने वाली जिन्दगी में कभी इतना नहीं हंस पाऊंगा जितना अपने बालपन में हंसता था.

कैसे हंस सकता हूँ जब मेरी लाल मुंह वाली, सदा खुश रहने वाली मां अब नहीं है - वो जो कि इतनी प्यारी तरह से हंस सकती थी कि उसकी आँखों से आंसू बहने लगते थे और हंसते-हंसते उसका कलेजा मुंह को आ जाता था और दम-सा घुटने लगता था.

और वो भी कभी उतना ज्यादा नहीं हंसी थी जितना उस दिन जब हम दोनों ने सात पैसे ढूँढने में पूरी दोपहर गुजार दी थी. हमने खोजा था और पा भी लिया था उन्हें. तीन पैसे मशीन की दराज़ में, एक अलमारी में और बाकी ज़रा कठिनाई से ढूंढ सके थे.

"पहले तीन पैसे मां ने स्वयं ही ढूंढ लिए. सोचती थी, बाकी भी दराज़ में मिल जाएंगे क्योंकि उसी मशीन पर सिलाई करती थी लोगों के लिए और जो पैसे कमाती थी उसी में डाल देती थी."

पहले तीन पैसे मां ने स्वयं ही ढूंढ लिए. सोचती थी, बाकी भी दराज़ में मिल जाएंगे क्योंकि उसी मशीन पर सिलाई करती थी लोगों के लिए और जो पैसे कमाती थी उसी में डाल देती थी. मेरे लिए वो दराज़ कभी न ख़त्म होनेवाले एक खजाने की भांति थी, जिसे बस छुओ और जादू की मेज़ सामने लग जाए.

मुझे आश्चर्य हुआ जब मां उसमें ढूंढ रही थी - सुई, अंगुश्ता, रिबन, बटन, लेस सब इधर-उधर का निकलता आ रहा था. बोलीं - 'क्या छुप गए हैं?'

'क्या?' मैंने कहा. हंसते हुए बोली 'अरे पैसे'. खींच कर दराज़ बाहर निकाल लिया - 'इधर आ बेटे, इन बदमाशों को ज़रा ढूंढें - इन बहुत शैतान छोटे-छोटे पैसों को.'

उकड़ूं बैठ गई ज़मीन पर और इस तरह दराज़ को रखा जैसे डर हो कि अगर ध्यान न रखा तो पैसे उड़ जाएंगे, इस तरह उसे उलटा दिया जैसे तितली पकड़ने के लिए आदमी अपनी टोपी से उसे ढँक दे. असंभव था इस पर हंसी न आना.

'इसके अन्दर हैं, छुपे हुए हैं.' लगातार हंसती रहीं और उठने की कोई जल्दी नहीं दिखा रही थी - मानो अगर एक भी पैसा अन्दर है तो उसे निकलने न देंगी.

मैं भी पास में उकड़ूं बैठ गया, इस तरह ताकता रहा कि कहीं चमकते हुए पैसे छुप न जाएं. पर दराज़ में कोई हरकत नहीं हुई.

हाँ दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और बच्चों जैसे इस तमाशे पर हँसे.

मैंने उस उलटे हुए दराज़ को छुआ.

'शश' मां ने धमकाया - 'शान्ति रख, अभी भाग जाएंगे. चोरों की तरह. तू अभी नहीं जानता कितना तेज़ भागने वाले जानवर हैं ये पैसे. बहुत तेज़ी से दौड़ते हैं लुढ़कते हुए.'

दाएं-बाएँ झुके हम दोनों. काफी जानकारी थी अब तक कि कितनी तेज़ी से लुढ़कते हैं पैसे.

जब कुछ देर बाद मुझे फिर से ध्यान आया तो मैंने धीरे से फिर दराज़ को उठाया थोड़ा-सा...

'अरे!' फिर मां चिल्लाई और मैंने इतनी तेज़ी से हाथ हटाया मानो जलती हुई अंगीठी तक पहुंच गया हो.

'अरे उड़ाऊ बेटे, ध्यान से क्यूं जल्दी उन्हें भगाना चाहता है? यह तब तक हमारे हैं जब तक यहाँ दराज़ के नीचे हैं. कुछ समय तक तो वहीं रहने दे. तू जानता है मुझे धुलाई करनी है. उसके लिए साबुन जरूरी है. साबुन के लिए कम-से-कम सात पैसे ज़रूरी हैं, इससे कम में आएगी नहीं. मेरे पास तीन पैसे हैं, चार और चाहिए और वो यहीं हमारे छोटे-से घर में हैं. यहीं रहते हैं, पर यह नहीं चाहते कि हम उन्हें तंग करें. अगर नाराज़ हो गए तो ऐसे गायब हो जाएंगे कि फिर कभी नजर तक नहीं आएँगे. इसलिए ध्यान से, पैसे बहुत संभालने की चीज़ है, बड़ी कोमलता से, आदर से रखना पड़ता है इन्हें. रईस लड़कियों की तरह से आसानी से मूड बिगड़ जाता है इनका. तू कोई प्यारी-सी कविता नहीं जानता जिसके द्वारा इन्हें फुसलाकर बुला सकें?'

इस बातचीत के दौरान हम दोनों काफी हंसते रहे. मैं एक घोंघे को उसके घर से बुलाने का गीत जानता था. घोंघे की बजाय 'पैसे चाचा' लगा कर मैंने शुरू किया -

पैसे चाचा बाहर आओ
घर तुम्हारा जल रहा है

पर दराज़ के नीचे सौ तरह की चीज़ें थीं. सिर्फ नहीं थे तो पैसे. मां ने खिचे हुए होंठो से उदास होकर इधर उधर ढूंढा, पर बेकार -

"लो अब चार पैसे हो गए. अब दुखी मत होना बच्चे. अब हमारे पास सात पैसे का बड़ा हिस्सा तो हो ही गया है. अब तो बस केवल तीन पैसे चाहिए. अगर एक घंटे में उन्हें भी ढूंढ पाएं तो शाम की चाय के समय से पहले भी मैं धुलाई कर सकती हूँ."

'हमारे पास अगर मेज़ होती तो कितना अच्छा होता! उससे ढँक देते तो ज़्यादा अच्छी तरह छुपा पाते और तब पैसे यहीं नज़र आते. मैंने हर चीज़ को कुरेद-कुरेद कर देखा और सबको दराज़ में डाल दिया. मां इस बीच में कुछ सोचती रही. इस तरह अपने दिमाग को सोच में डालती रही मानो वास्तव में कहीं रखकर पैसे भूल गई हों.

मुझे कुछ याद आ रहा था.

'मां, मैं एक जगह जानता हूँ जहां पैसे हैं.'

'कहाँ बेटे? चल जल्दी ढूंढें कहीं बर्फ की तरह पिघल न जाएं.'

'शीशे की अलमारी की दराज़ में थे.'

'ओ अभागे बच्चे, अगर पहले बताता तो वो भी आज न होते.'

हम खड़े हुए और पहुंचे शीशे की अलमारी के पास, जिसमें काफी समय से शीशा न था. मगर दराज़ में वो पैसा था जिसके बारे में मैं जानता था. तीन दिन से उसे चुराने की तैयारी कर रहा था, मगर हिम्मत नहीं हो रही थी. अगर चुरा पाता तो मीठी गोलियां खरीद कर खा लेता.

लो अब चार पैसे हो गए. अब दुखी मत होना बच्चे. अब हमारे पास सात पैसे का बड़ा हिस्सा तो हो ही गया है. अब तो बस केवल तीन पैसे चाहिए. अगर एक घंटे में उन्हें भी ढूंढ पाएं तो शाम की चाय के समय से पहले भी मैं धुलाई कर सकती हूँ. तब तक भी धुलाई का समय रहेगा. जल्दी आ, बाकी दराजों में भी एक-एक पैसा मिल जाएगा.

अगर हर दराज़ में पैसा होता तो बहुत पैसे हो जाते. क्यूंकि उस पुरानी अलमारी की युवावस्था में उस तरह के खाने बनाए गए थे, जिनमें कई चीज़ें छुपाई जा सकती थीं. पर हमारे पास चीज़ों का कोई बोझ नहीं था, इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता था कि वह अलमारी दीमकों द्वारा काफी खाई जा

चुकी थी और खोखली हो गई थी.

मां ने हर दराज से बातचीत शुरू की - 'यह अमीर दराज़ था - इसमें कभी कुछ नहीं था. यह हमेशा उधार पर जिया. और तू कमबख्त भिखारी, तेरे पास तो कभी कुछ नहीं होगा क्योंकि तू तो हमारी गरीबी की चौकसी कर रहा है ना! और तू, तुझसे हालांकि आज पहली दफा मांग रही हूँ, पर तू आज भी नहीं देगा.'

और इस तरह आख़िरी दराज़ को खोलते हुए हंसते हुए चिल्लाई, 'इसमें सबसे ज्यादा होंगे' - दराज़ में तला तक गल चुका था. हम हंसी से लोट-पोट होकर ज़मीन पर बैठ गए.

'ज़रा ठहर' - अचानक मां बोली -'अभी हमारे पास पैसे पूरे हो जाएंगे. तेरे पिता के कपड़ों में देखती हूं.' दीवारों पर कीलें गडी थीं. उन पर कपड़े टंगे थे. और क्या देखते हैं कि पिताजी की पहली जेब से ही एक पैसा निकल पड़ा.

अपनी आँखों पर यकीन न आया -मिल गया, यह रहा, अब कितने हो गए? एक, दो, तीन, चार, पांच. अब केवल दो चाहिए. अरे दो पैसे क्या हैं, दो भी मिल जाएंगे. बड़े जोश से आख़िरी जेब तक टटोल डाली, पर बेकार. एक भी न मिला. सबसे बढ़िया मां का मजाक भी कहीं से दो पैसे उन्हें न दिला सका.

मां के गालों का रंग लाल गुलाब की तरह हो गया था. इस आपाधापी में और इतनी दौड़-धूप से. उन्हें अधिक काम करना मना था, क्योंकि उससे एकदम बीमार पड़ सकती थी. पर यह तो एक असाधारण काम था. पैसे खोजने से क्या कोई किसी को मना कर सकता है?

चाय का समय आ गया और आकर चला भी गया. बस अब जल्दी ही शाम हो जाएगी. कल पिताजी को पहनने के लिए साफ़ कमीज़ चाहिए और उसकी धुलाई संभव नहीं. कुँए के पानी से तेल की कालिख कहाँ साफ़ हो सकती है भला?

तब मां ने अपने माथे पर हाथ मारा.

> *शाम होने लगी और हम अपने छः पैसों के साथ ऐसा महसूस कर रहे थे जैसे हमारे पास एक पैसा भी न हो. बनिया उधार पर देगा नहीं. और पड़ौसी? वो तो हमारी ही तरह गरीब थे, उनसे एक पैसा नहीं मांगेंगे.*

'ओफ्हो, मैं तो गधी हूँ. मैंने अपनी जेबें तो देखी नहीं. चलो अब देखती हूँ.' देखा और जनाब, वहां भी एक पैसा मिला.

'छठा पैसा?'

हमें बुखार-सा चढ़ने लगा. अब सिर्फ एक पैसे की ज़रुरत है.

अपनी जेब भी दिखा. शायद उसमें भी हो. मेरी जेब? वो तो दिखा ही सकता था. उसमें कुछ नहीं मिला.

शाम होने लगी और हम अपने छः पैसों के साथ ऐसा महसूस कर रहे थे जैसे हमारे पास एक पैसा भी न हो. बनिया उधार पर देगा नहीं. और पड़ौसी? वो तो हमारी ही तरह गरीब थे, उनसे एक पैसा नहीं मांगेंगे.

और कुछ नहीं कर सकते थे, सिर्फ खुले दिल से अपनी खस्ता हालत पर हंस सकते थे. इसी समय एक भिखारी दरवाज़े पर आया. गाना गाते हुए बड़ी नम्रता से लगा भीख माँगने - 'भाई पैसा दे दो.'

मां आँखें गड़ाकर उसकी ओर देखने लगीं और हंसते हुए बोलीं - 'बाबा रहने दो - आज पूरी दोपहर यहां लेटी हूँ, एक पैसे की कमी की वजह से एक टिकिया साबुन नहीं खरीद पाई हूँ.'

भिखारी धर्मात्मा-सा वृद्ध था. मां की तरफ देखते हुए बोला - 'एक पैसा?'

'हाँ.'

'मैं देता हूँ.'

'अभी भिखारी से भीख लेने की नौबत नहीं है.'

'अरे बेटी, छोड़ो! मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता. इससे मेरा भी भला होगा.'

मेरे हाथ में उसने एक पैसा रख दिया और धन्यवाद देता हुआ चला गया.

'हे भगवान!' मां बोली 'भाग उसके पीछे.'

और फिर एक क्षण के लिए खड़ी रह गई. उसके बाद जोर-जोर से हंसने लगीं. 'क्या सही समय पर पैसे इकठ्ठा हुए हैं. आज तो अब धुलाई नहीं कर सकती. अन्धेरा हो गया है और हमारे पास लालटेन है नहीं.'

हंसते-हंसते उसका दम उखड़ने लगा. तकलीफदेह, मरणतुल्य सांस चलने लगी और मैं उसकी तरफ यूं बढ़ा कि मदद कर सकूं. जब मेरे दो हाथों में उसका मुंह झुक गया तो मैंने अपनी हथेली पर कुछ गर्म पदार्थ महसूस किया.

खून था वह! वह मंहगा, पवित्र खून मेरी मां का था. उस मां का, जो ऐसे हंसना जानती थी जैसे गरीबों के बीच भी कुछ विरले ही जानते हैं.■

प्रस्तुति : विजया सती

डॉ. सरोजिनी साहू
सम्पर्क - B/10, Officers' Colony, Rampur Colliery-768225, Brajraj nagar Jharsuguda (Orissa)
email: sarojinisahoo2003@yahoo.co.in http://www.sarojinisahoo.com

अनुवाद

ओडिया से हिन्दी अनुवाद जगदीश महंती

पिता

तुम रहते हुए भी
कहीं नहीं हो, क्यों?
हमेशा आते-जाते हो
पर एक ही बिंदु पर
स्थिर हो क्यों?

पत्ते झड़ते हैं, उगते रहते हैं
आंधी से अस्त-व्यस्त जीवन
पुष्प की जड़ में जम जाती है
बर्फ के कण
फिर भी तुम निर्विकार
मंदिर के शिखर के भांति, क्यों?

समय पर भूख
धूप से प्यास
प्यास से थकान
पर हर दरवाजे पर तुम्हारी दस्तक
जैसे अंत तक लड़ता हुआ सैनिक हो तुम

डाल-डाल पर चिड़ियों की चें-चें
उस पेड़ की छाया में आश्रित मैं
पर लगता है
न जाने क्यों
पास होते हुए भी बहुत दूर हो तुम

तुम पसार लिए हो बाहें
वृक्ष-शाखा की तरह
बुलाओ या न बुलाओ
गिलहरी से तितली तक
कितने निर्भय से आते-जाते रहते हैं

तुम्हारे आपाद-मस्तक
पर तुम हो निर्जीव
कठफोड़वा खोदते हैं तुम्हारे शरीर
बुलबुलों की तरह
झूलते हैं, अंडे देकर उड़ जाते हैं
उनके बाट जोहते हुए
तुम बैठे रहते हो

सूखती हुई शिराएँ
निष्प्रभ होती रहती आँखों की दृष्टि
वक्कल छोड़ता रहता है शरीर
और
रहते हुए भी
कहीं न रहते हुए
शब्द-हीन तुम।

■

डॉ. शिव गौतम

नेपाल की पूर्वी पहाड़ियों में जन्म. नेपाली भाषा में कविताएँ, लघुकथाएँ एवं आलेख लिखते हैं. रचनाएँ विभिन्न नेपाली पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कविताओं की दो किताबें प्रकाशित. १९८५ से अमेरिका में निवास एवं वर्तमान में बोस्टन में रहते हैं. सम्प्रति - हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय में एसोसियेट प्रोफेसर (Biostatistics).

सम्पर्क : shivagau@gmail.com

भूर-भुव-स्व

अपने से ही अपनी उत्पति
खुद-ब-खुद हुआ
स्वयम-भू
यह व्याप्ति
उस ओर से
देखता रहे
शायद इसी तरह

सिन्दूरी और पीला मिश्रित
सौम्य, संयमित और स्मित
प्रकाश पुँज वो आँख से
अरुणिमा लेपित क्षितिज में
ओस की नमी से बुने हुए
पतली-सी धुन्ध और
बादलों के रेशों से छनकर
उस आँख के जरिए रश्मि की बौछार
सरकाता रहे
अन्धेरे में लीन होने की
अस्तित्वहीन होने की अवस्था को
और
स्पर्श करते रहे
मेरे होने को
मेरे मन को
सचेत कराते रहे
मेरे चेतन को
बोध कराते रहे
मेरे बोधि को

वरण करके मुझे
वह
अनावरण कराता रहे
अन्धेरों के आवरणों को छीलकर
उसके रहस्यों को
और
उसी आँख में से होकर
झांकने देता रहे
उधर की ओर
अपने से ही अपनी उत्पत्ति
खुद-ब-खुद हुआ
स्वयम-भू
यह व्याप्ति।
■

डॉ. देवेन्द्र मोहन मिश्रा

उत्तरप्रदेश में जन्म. पटना विवि से उच्च शिक्षा एवं अफ्रीकन इतिहास पर यू.के. में पी.एच-डी. हासिल की. भारत के अलावा युथोपिया, नाईजीरिया, कीनिया के विश्वविद्यालयों ने दर्जनों शोध-पत्र प्रकाशित किये. कनाडा में हिंदी प्रचार में लगे स्वयंसेवक के तौर पर ख्याति अर्जित की. हिंदी साहित्य सभा, टोरंटो के आप अध्यक्ष रह चुके हैं. कवितायें हिंदी विश्वा, हिंदी चेतना, हिंदी टाइम्स, हिंदी अब्रॉड आदि में प्रकाशित हुई हैं. वर्तमान में आप पैनोरमा इंडिया से सचिव के तौर पर जुड़े हैं.

सम्पर्क : devendramisra@hotmail.com

कविता

देश दुर्दशा

शर्म से है मस्तक झुका कैसे करूं बखान
धूल धूसरित हो रहा मेरे भारत का मान

मेरे भारत का मान बलात्कारी ठुकरायें
खुले आम नारी की अस्मिता लूट के जायें
बलात्कार क्यों बढ़ रहा कारण कई सुझावें
हुआ अजीर्ण बुद्धि का इनको देव बचावें

कुछ नेता विपरीत ग्रहों का खेल बतायें
खाप पंचायत 'चाउमीन' को दोष लगायें
यूपी वाले राजनीति के एक खिलाड़ी
बालीवुड फ़िल्मों को कारण मुख्य बतायें

पहनावे को दोष दें बात समझ न आई
धर्मगुरु संदेश गुहार लगाओ भाई
एक राज्य के मुख्यमंत्री देत दुहाई
संध्याकाल के बाद न बाहर जाओ माई

इस विपत्ति में भ्रमित चित्त से मुक्ति दो कर्तार
नहीं रोग का ज्ञान जिन्हें वो वैद्य करें उपचार।

■

चिंतन

चिंतन करते निज स्वार्थ हितों का और न कछु सुहाय
सन् चौदह में बचाओ कुर्सी देश भाड़ में जाय

यदि सत्ता है विष समान तो काहे रहे लुभाय
निज संतति केहि कारने दिये युवराज बनाय
भावुक हैं वोटर भारत के नेता नाटककार
झूठी सद्भावना दिखा करें वोट बैंक तैयार

जैसे हो वैसे रहो काहि रहे बौराय
काग चले गति हंस की तो जग हंसी उड़ाय
आतातायी घर में घुसे करके सीमा पार
मुंड माल लेकर गये तम पौरुष धिक्कार

जनता झेल रही कष्टप्रद मंहगाई की मार
चिंतन शिविर न कर सका इस पर कोई विचार
लुप्त हो गयी दामिनी सुप्त हो गया देश
मुद्दे नये उठा रहे गृह मंत्री संदेश।

■

रामनारायण सिरोठिया
१४ नवंबर १९२० को गांव गरेठा, तहसील सिरोंज, जिला विदिशा (म.प्र.) में जन्म. शिक्षा - बी.कॉम, एल.एल.बी. आनर्स.
प्रकाशित कृतियां - मन के रंग हजार, मनोद्गार (कविता संग्रह) सम्प्रति - सेवानिवृत्त पूर्व आयकर अधिकारी,
सम्पर्क - एम.आई.जी. प्लॉट, १०५ एच.ए., रविशंकर शुक्ला नगर, इंदौर (म.प्र.) मोबा. ०९८९३८४९१८९

हिंदी दिवस

सुदृढ़ राष्ट्र संचालन हेतु, एक राष्ट्र की भाषा,
संविधान द्वारा स्वीकृत है प्यारी हिंदी भाषा।

उड़िया, बंगाली, पंजाबी, तमिल, तेलुगु और मराठी,
केरल, कश्मीरी, गुजराती, कन्नड़ को भी हिंदी आती।

सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत जरूरी हिंदी भाषा,
भारत भर में बोली जाती सबसे ज्यादा हिंदी भाषा।

शासन और प्रकाशन में, माध्यम हो केवल हिंदी,
बोलें, लिखें, प्रचार करें जन-जन की भाषा हिंदी।

पढ़े-लिखे भारतीय, त्यागो अंग्रेजी का आकर्षण,
व्यवहारिक जीवन में हों, प्रयोग हिंदी का दिन-दिन।

हिंदी भाषी प्रांत बोलते, लिखते पढ़ते हिंदी,
अन्य प्रांत भी निज भाषा के साथ सीखते हिंदी।

हिंदी-दिवस प्रतिज्ञा लें हम, हिंदी का उद्धार करेंगे,
अंग्रेजी का मोह छोड़ कर हिंदी का व्यवहार करेंगे।
■

इमरती

तुम गोल-गोल कितनी सुंदर सौंदर्यवान
तुम ऐंठी-ऐंठी अकड़ी चलती-नीचे ऊपर बलखाती
तुम रस के मद में भरी, अरी क्यों इठलाती
जाली में जाकर बैठ गई, तज गई अहा! कैसी दुकान
रसिकों की तो तुम जान प्रिये भूखे के मन का मधुर गान।

तुम लाल-लाल पीली-पीली या दोनों का मिश्रण समझें
तुम कलाकार की कला या कि मिष्ठानों की मेवा समझें
हम समझ न पाए तुम्हें, कुछ बतलाओ, बोलो सुजान
क्यों बैठ गई चुपचाप अरे क्या ले लोगी ये मधुर जान!

तुम काली की संतान मगर गोरी बनने में कसर न की
सजकर बाजार में निकल पड़ी, भारत को भी पेरिस समझी
समझी सो समझी ठीक! अरे तेरी भी शान निराली है
तुम मेमों की बाप बनी लेकिन तेरी माँ काली है
यह बात मुझे मालूम या उसको, जिसकी दुकान
शक्कर के चक्कर में पड़ बन गई आज इतनी महान।

प्लेटोंवाले टुकड़े कर के दोनेवाली साबुत निगलें
तुमको श्वानपुत्र लख आते ऊपर मंडराती चीलें
तुम रस की भरी नवेली हो तुम पर जग देता रहा जान
फिर मैं क्यों तुमसे विमुख चलूँ, लेकर अपना झंडा निशान
तुम गोल-गोल कितनी सुंदर सौंदर्यवान।
■

हरकीरत हीर

३१ अगस्त को आसाम में जन्म. शिक्षा- एम.ए. (हिन्दी), डी.सी.एच., हिन्दी तथा पंजाबी काव्य, कहानियों का लेखन तथा पंजाबी व असमिया में अनुवाद. 'इक दर्द' तथा 'दर्द की महक' काव्य संग्रह प्रकाशित. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. सम्प्रति - महिला उत्पीड़न के खिलाफ गैर सरकारी संस्था का संचालन.

सम्पर्क : १८ ईस्ट लेन, सुन्दरपुर हाउस, गुवाहाटी-७८१००५ ईमेल - harkirathaqeer@gmail.com

कविता

घरौंदे

उसने कहा :
तुम तो शाख़ से गिरा
वह तिनका हो
जिसे बहाकर कोई भी
अपने संग ले जाये
मैंने कहा :
शाख़ से गिरे तिनके भी तो
घरौंदे बन जाते हैं
किसी परिंदे के।

ख़ामोशी से पहले

ऊपर स्याह आसमां था
और नीचे आग से जलते अक्षर
इन दोनों के बीच से गुजरकर
मैंने अपनी मुहब्बत अयाँ की है
इससे पहले कि वह फिर
ख़ामोशी में पनाह ले
आ इसे इन हवाओं में
नस्ब कर दें!

कोई तो दे तबशीर

आज फिर
गिरी है दुआ
आज फिर हाथ उठा है
रात कपड़े उतारे बैठी है
फासले गर्द से भरे हैं
अय खुदा!
कोई तो तबशीर दे मुझे
के आज मुहब्बत
अपनी हथेली फैला
खूब रोई है!

नस्ब- कायम, **तबशीर-** शुभसुचना

मुहब्बत

धरती में
जब चारों ओर आग लगी थी
सूरज ने अपना चेहरा ढँक लिया था शर्म से
चाँद लुढ़क आया था पत्थरों पे
कोई जहरीले धागों से सी रहा था कफ़न
उस वक़्त
मुहब्बत सफ़ेद लिबास में मेरे सामने खड़ी थी
मैंने हौले से उसे छुआ और पूछा -
क्या तुम मुझे इक
फूल दोगी?

नजरिया

उसकी नज़रें देख रही थीं
रिश्तों की लहलहाती शाखें
और मेरी नज़रें टिकी थी
उनकी खोखली होती जा रही
जड़ों पर।

■

आयुष 'चिराग'
आयु - २१, शिक्षा - स्नातक. 'हनुमान शताष्टिका' पुस्तक प्रकाशित. साधना टीवी पर काव्य पाठ प्रसारित. वेदामऊ संस्कृत विद्यालय द्वारा 'काव्यालंकार' की मानद उपाधि से अलंकृत. सम्प्रति - एक कंपनी में अभियंता.
सम्पर्क : गली नं. २, शिवपुरम, बदायूँ (उ. प्र.) ईमेल - ayushsharma376@gmail.com

एक

ऐ दिल ये अँधेरों से निकलने का वक़्त है
अब शाम हो गयी, तेरे जलने का वक़्त है

लोगो सहर हो गयी है नींद से जागो
करवट नहीं ये दौर बदलने का वक़्त है

आएगी सामने कई तारों की असलियत
ये वक़्त एक शम्स के ढलने का वक़्त है

सरकार ने ऐलान किया है मुआवजा
ये हादसे का दर्द भूलने का वक़्त है

मसरुफ़ियत की कैद का आलम ये है 'चिराग'
तू सामने है और मेरे चलने का वक़्त है।
■

दो

नज़र में नोक-ए-खंजर भी चुभाई जाये
जब उन्हें मुल्क की तस्वीर दिखाई जाये

हर एक शख्स के लबों पे लगा है पहरा
यही है वक़्त कि आवाज़ उठाई जाये

फूल इतरा रहे हैं बाग़ में बहार जो है
ज़रा तुम आओ यहाँ आग लगायी जाये

जहाँ पहुँच न सके मेरे ख्यालों की महक
तेरी तस्वीर वहां दिल में छुपाई जाये

चाँद तो सब ने ही देखा है मगर तुझको नहीं
चलो ज़माने से एक शर्त लगायी जाये

कई बरसों से यही कह रहा है ये पागल
मिले जो काम तो घर माँ की दवाई जाये।
■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

खुद को कमरों में ढूंढते हैं लोग

जोधपुर में जन्मे और आज उर्दू शायरी के आकाश पर चमकते हुए सितारे जनाब शीन काफ निजाम उर्फ़ शिव कुमार निजाम की किताब 'सायों के साए में' वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर ने प्रकाशित की है. शीन काफ निजाम साहब को मध्यप्रदेश सरकार द्वारा दिए गए 'इकबाल सम्मान' के अलावा 'भाषा भारती सम्मान', उर्दू अकेडमी अवार्ड और बेगम अख्तर अवार्ड से भी नवाज़ा जा चुका है, लेकिन इन सबसे बड़ा अवार्ड उन्हें उनके लाखों पाठकों और श्रोताओं ने अपना प्यार लुटा कर दिया है. निजाम साहब अपनी शायरी का जलवा अमेरिका यूरोप और खाड़ी के मुल्कों में भी दिखा चुके हैं.

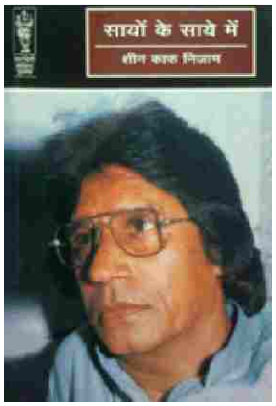

जीत के ज़ज्बे ने क्या जाने कैसा रिश्ता जोड़ दिया
जानी दुश्मन भी मुझको अब मेरा अपना लगता है
इस बस्ती की बात न पूछो इस बस्ती का कातिल भी
सीधा-सादा, भोला-भाला, प्यारा-प्यारा लगता है

प्रसिद्ध कवि अज्ञेयजी ने कहा है 'मुझे कविता प्रायः याद नहीं रहती, लेकिन निजाम के कुछ शेर मुझे अकस्मात कंठस्थ हो गए और वो मेरी भाव संपत्ति का अंग बन गए.' इस बात को उनकी इस किताब को पढ़ कर अच्छी तरह जाना जा सकता है. जो शेर बिना भारी भरकम शब्दों का सहारा लिए सीधे दिल में उतरते हों उन्हें याद करना मुश्किल नहीं होता. इंसान की मुश्किलों और खुशियों को सही लफ्ज़ देना ही शायरी है और निजाम साहब इसमें सिद्ध हस्त हैं.

पेड़ों को छोड़ कर जो उड़े उनका जिक्र क्या
पाले हुए भी गैर की छत पर उतर गए
यादों की रुत के आते ही सब हो गए हरे
हम तो समझ रहे थे सभी ज़ख्म भर गए

शायर कुमार पाशी का कहना है 'निजाम के शेर पढ़ते हुए बार-बार एहसास होता है कि उनके सामने उदास मंज़र फैले हुए हैं, जिन की झलकियाँ वे लफ़्ज़ों में पेश करते हैं.'

आज हर सम्त भागते हैं लोग
गोया चौराहा हो गए हैं लोग
अपनी पहचान भीड़ में खो कर
खुद को कमरों में ढूंढते हैं लोग

वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर वालों की ये विशेषता है कि वो अपने पाठकों को उच्च साहित्य की पुस्तकें अविश्वश्नीय मूल्य पर उपलब्ध करवा देते हैं. क्या आप भरोसा करेंगे की निजाम साहब की ये अनमोल पुस्तक जिसमें उनकी लगभग सौ ग़ज़लें, दोहे और लाजवाब नज्में संगृहीत है का मूल्य मात्र पैंतीस रुपये ही है? मुझे तो सच यकीन नहीं हुआ था लेकिन ये सत्य है. आप ये पुस्तक उनसे उनके मेल vagdevibooks@gmail.com पर अपना पता भेज कर मंगवा सकते हैं या फिर उनसे ०१५१-२२४२०२३ फोन नंबर पर संपर्क कर इसके बारे में जानकारी ले सकते हैं.

> *जो शेर बिना भारी भरकम शब्दों का सहारा लिए सीधे दिल में उतरते हों उन्हें याद करना मुश्किल नहीं होता. इंसान की मुश्किलों और खुशियों को सही लफ्ज़ देना ही शायरी है और निजाम साहब इसमें सिद्ध हस्त हैं.*

शीन काफ निजाम साहब को मैंने जयपुर की महफ़िलों में अक्सर सुना है और उनकी गहरी आवाज़ और अदायगी का कायल हूँ. आपने उनके शेर तो बहुत सुने होंगे लेकिन वो निदा फाजली साहब की तरह कमाल के दोहे भी कहते हैं.

ये कैसा इनआम है, ये कैसी सौगात
दिन देखे जुग हो गए, जब जागूं तब रात
करे जुगाली रात दिन, शब्दों की नादान
है पोथी का पारखी, अक्षर से अनजान
गोबर से घर लीप कर गोरी हुई उदास
दुहरायेगा कौन कल आँगन का इतिहास।■

अनिल प्रभा कुमार

दिल्ली में जन्म. दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी आनर्स और एम.ए. करने के बाद आगरा विश्वविद्यालय से 'हिन्दी के सामाजिक नाटकों में युगबोध' विषय पर शोध करके पी.एच.डी. की उपाधि पाई. १९७२ से अमरीका में आकर बस गईं. १९८२ तक न्यूयार्क में 'वायस ऑफ अमरीका' की संवाददाता के रूप में काम किया और फिर अगले सात वर्षों तक 'विज़न्यूज़' में तकनीकी संपादक के रूप में. इस दौर में कविताएँ लिखीं. रचनाएं वर्त्तमान-साहित्य, हंस, अन्यथा, कथादेश, शोध-दिशा और वर्त्तमान साहित्य पत्रिकाओं के अलावा अनुभूति, साहित्य-कुंज आदि पत्रिकाओं में छप चुकी हैं. संप्रतिः विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यूजर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य का प्राध्यापन कर रही हैं. सम्पर्क : 119 Osage Road, Wayne, NJ 07470, USA ईमेल aksk414@hotmail.com

कहानी

बेटे हैं न

वह पता नहीं कब से विमूढ़-सी उसी एक जगह पर बैठी थी, जहाँ कमरे के अंदर लाकर हरीश उसे बैठा गया था। उसके हाथों का कम्पन और भी बढ़ गया जिसे उसने अपने कांपते घुटनों के बीच दबा लिया। उसकी आँखें खुली थीं, पर देखते हुए भी कुछ देख नहीं रही थीं। कान बाहर की ओर लगे थे। दिमाग जैसे एक सन्नाटे में था, कुछ सोचने की शक्ति ही नहीं थी। बस यही लगा कि ज़िन्दगी ने फिर उसे इस उम्र में एक पछाड़ दी है और वह तक़दीर के इस फैसले को सुन रही है, देख रही है, पर समझ नहीं पा रही। इतनी डरी है कि सांसें भी अपनी गति का पता नहीं लगने देना चाहतीं।

सब कुछ इतनी जल्दी घटित हो गया कि उसे संभलने की भी चेतना नहीं रही। धीरे-से निढाल होकर उसी छोटे से पलंग पर सहमी-सी लेट गयी, वैसे ही बाँहें और घुटने सिकोड़े हुए। कितना अनधिकृत लग रहा था उसे, इस वक्त इस जगह पर अपना होना।

महीना भर पहले ही तो वह अपने भविष्य से अनजान कितनी खुशी से, विश्वास के साथ भारत से लौटी थी। चार महीने वहां किसी तरह उसने रिश्तेदारों, मित्रों के यहाँ रहकर जबरदस्ती काटे थे। यूँ कहें तो वहां रिश्तेदार रहे भी कौन-से थे? हरीश के पिताजी की मृत्यु के समय जेठजी का बड़ा सहारा था। चालीस साल की उम्र में ही जब वह विधवा हो गई तो अपने को बेसहारा पाकर वह फफक-फफककर रो उठती। जेठजी ने कहा था, जितना मैं कर सकूँगा कर दूँगा, किया भी। हरीश, जितेन्द्र और किशन को जब भी किसी मार्ग-निर्देश की आवश्यकता होती, वह हमेशा साथ देते। पर असली सहारा तो उसे अपनी दोनों छोटी बहनों ने ही दिया। दमयन्ती उससे छोटी थी पर पति डॉक्टर थे। उनकी प्रैक्टिस भी अच्छी चलती थी। दमयन्ती के तीनों बच्चे भी बड़ी मौसी से हिले-मिले थे, इज्जत और प्यार दोनों ही करते।

जब सत्या अपने पति के मरने के उपरान्त दोहत्थड़ मारकर जोर-जोर से रो रही थी, तब दमयन्ती ने उसे गले लगाकर थाम लिया था।

'रो नहीं बहना, तेरे बेटे हैं न? तीन तीन जवान बेटों की माँ है तू, सिर पर उठाकर रखेंगे तुझे। तुझे काहे की फिक्र, शुक्र कर कोई बेटी नहीं है ब्याहने को।'

> *ज़िन्दगी ने फिर उसे इस उम्र में एक पछाड़ दी है और वह तक़दीर के इस फैसले को सुन रही है, देख रही है, पर समझ नहीं पा रही। इतनी डरी है कि सांसें भी अपनी गति का पता नहीं लगने देना चाहतीं।*

वाकई सत्या ने जी पक्का करके हौंसला कर लिया था। हरीश ने बी.कॉम किया ही था। आगे पढ़ने की इच्छा को वहीं रोककर उसने अपने पिता के स्थान की पूर्ति कर, असिस्टेंट एकाउंटेंट की नौकरी ले ली। दमयन्ती ने पास ही में एक छोटा सा किराये का घर दिलवा दिया। शकुन्तला भी ज्यादा दूर नहीं थी और उसके पति बहुत नेक स्वभाव के थे, बाहर के सभी काम कर देते। हरीश तब भी माँ की तरह चुप-चुप रहा करता था, ऊपर से देखने से लगता शायद दब्बू होगा पर अंदर ही अंदर वह बहुत विद्रोह करता। हालात को देख कर वह चुप कर जाता।

जितेन्द्र को होश आया तो वह मिलिटरी में चला गया। शायद कमाता भी अच्छा था, पर माँ को हरीश की जिम्मेदारी सोच कर अलग-थलग ही रहता। किशन पढ़ाई में तेज था, अमरीका जाने की अर्जियाँ भरता रहता था। भानजे-भानजियों से घिरी सत्या को सब मॉसीजी ही बुलाते थे, यहाँ तक की बहुएँ आईं तो वह भी मॉसीजी ही कहतीं। माला आई हरीश की बहू बनकर तो लगा, अब घर 'घर' की तरह हो जाएगा। पर माला स्कूल से पढ़ाने के बाद आकर सीधे दमयन्ती के घर चली जाती। ताश खेलने और पिक्चरें देखने में उसे रुचि थी। सत्या में तब ताकत थी, हँसते-खेलते अकेले ही घर सँभाल लेती। जितेन्द्र की शादी हुई तो राधा सीधे ही उसके साथ बाहर पोस्टिंग पर चली गई। फिर किशन भी वर्षा से ब्याह करके अमरीका चला गया।

शुरू से ही जैसे यही एक घर का चित्र था। सत्या हमेशा हरीश की ही माँ रही, बाकी दोनों बेटों ने केवल इसे औपचारिकता ही माना। माला नौकरी जो करती थी, मानिक और मोनिका भी हो गए तो भी माला स्वतंत्र रहती। सत्या बड़े आराम से सबकुछ सँभालती कि बहू खुश रहे। हरीश और माला के स्वभाव का अंतर वह भी जानती थी। जानती थी कि माला बहुत महत्वाकांक्षिणी है, उसे संतोष शब्द से सड़ने जैसी गन्ध आती है। उधर हरीश को कहीं भी, किसी भी बात की जल्दबाजी नहीं होती।

माला हरीश को कुछ ऐसी धिक्कारती आँखों से देखती, जैसे कह रही हो 'माँ का बबुआ'। माला के दोनों भाई भी अमरीका पहुँच चुके थे। वह बेचैन थी उस नई दुनिया को हासिल करने के लिये और हरीश की कछुए वाली चाल से कुछ होने का नहीं था। आखिर वह दिन आ ही गया जब उसकी पैटीशन मंजूर हो गई। हरीश और बच्चों को अपनी सास की जिम्मेदारी पर छोड़कर वह अमरीका अपने भाई के पास आ गई। तीन वर्ष की मोनिका और एक वर्ष के मानिक की याद तो उसे तब भी आती थी, पर सोचती पहले अपने-आपको स्थापित तो कर ले। उसे एक मेडिकल-लैब में तकनीशियन की नौकरी मिल भी गई। फिर उसने अपने छोटे भाई के साथ मोनिका को बुलवा लिया। छह महीने बाद हरीश भी माँ को जल्दी बुलवाने का आश्वासन देकर मानिक के साथ अमरीका पहुंच गया।

अब गृहस्थी जमनी शुरू हो गई। हरीश को भी नौकरी मिल गई, पर माला के हिसाब और स्तर से नीची थी। उसने हरीश पर ज़ोर डाला कि अब वह भी मास्टर्स कर ले। खुद उसके काम में, ओवर-टाइम कर-करके ड्योढ़े पैसे बनाने की बहुत गुंजाइश थी। मुश्किल यह थी कि बच्चों को कैसे संभाला जाये? बेबी-सिटर बहुत महंगी पड़ती थी। उस पर सुबह-सुबह बच्चों को तैयार करके, बेबी-सिटर के पास छोड़ने जाने में बहुत असुविधा होती। फिर एक दिन माला ने खुद ही हरीश से कहा था, 'मॉसीजी को भी बुला लो, बच्चों को कोई अपना देखने वाला हो जाएगा।' हरीश के तो मन की बात थी। वह यहां है और माँ भारत में अकेली रह रही है। बस, सत्या तभी से यहाँ आ गई थी। उसने तो तब यह सोचा था कि वह हमेशा के लिए ही अमरीका जा रही है - बेटों के पास - हरीश के पास। किशन तो पहले ही वहां था, अच्छी नौकरी पर था और वर्षा भी मिलनसार थी। इधर जितेन्द्र भी कहता था कि मिलिटरी से इस्तीफा देकर जल्दी ही वह भी अमरीका चला आएगा। राधा आर्मी-ऑफ़िसर की पत्नी थी, सत्या को वह अपनी काम करने वालियों की तरह ही समझती। सत्या दबती तो सभी से थी पर राधा के सामने जरा ज़्यादा ही सहम जाती। बहुओं पर सास जैसा कोई रौब डालने के योग्य वह अपने को समझती ही नहीं थी। भीतर से वह आश्वस्त थी, उसका बड़ा बेटा उसका ख्याल रखनेवाला है।

बच्चे बड़े हो रहे थे और सत्या उनके लिए उपयोगी होना चाहती थी। वह स्कूल से लौटते, माला तो घर होती नहीं थी, वह दौड़ कर रसोई में घुस जाती। कभी तो बच्चे उसके बनाए गए आलू के परांठे और मटर-पुलाव वगैरह खा लेते पर ज्यादातर झल्लाते। उन्हें अपने ही हॉट-डॉग और हैमबर्गर खाने होते थे। सत्या मांस छू नहीं सकती थी। माला फटाफट आकर बच्चों की मर्जी की चीज़ें बना देती या ज्यादातर

> "सुबह-सुबह बच्चों को तैयार करके, बेबी-सिटर के पास छोड़ने जाने में बहुत असुविधा होती। फिर एक दिन माला ने खुद ही हरीश से कहा था, 'मॉसीजी को भी बुला लो, बच्चों को कोई अपना देखने वाला हो जाएगा।'"

माला का व्यवहार धीरे-धीरे बदलता जा रहा था। बच्चे किशोर हो गए थे, कॉलिजों में जाने की तैयारी शुरू हो गई। धैर्य और सहनशक्ति तो माला में कभी भी नहीं थी, पर अब उसकी खीज विस्फोटक होती जाती थी।

बाज़ार से ही ले आती ताकि कुछ बनाना ही ना पड़े। सत्या खिसियानी-सी एक तरफ हो जाती।

माला हफ्ते में सातों दिन काम करती। अब वह सुपरवाइज़र हो गई थी, खूब पैसे कमा रही थी, हरीश के मुकाबले कहीं ज्यादा। इसलिये उसकी घर में धौंस भी ज़्यादा थी। मिलने-जुलने वाले पीठ-पीछे कहते, 'पता है, उनके घर में पैंट कौन पहनता है?'

माला ने अब अपनी माँ को भी भारत से अमरीका बुला लिया था - पक्का। माला की माँ अधिकार से रहती, उसकी कमाऊ बेटी थी, मर्दों से किसी बात में कम नहीं। अब माला के भाई-बहन भी खुल कर आने लगे। ताश चलती, ठहाके लगते, हरीश एक कोने में चुप सा बैठा रहता। माला अपने भाइयों के साथ पैसों के इन्वेस्टमेंट की, स्टॉक खरीदने की, घर में परिवर्तन करने कि बातों पर सलाह-मशविरा करती, हरीश एक तरफ बैठकर सुना करता। सत्या सबकी बहुत ख़ातिरदारी करती। माला की माँ के आने से रौनक तो बढ़ गई थी। वह बहुत अच्छी-अच्छी मज़ेदार बातें करती, बच्चों को भी बहुत प्यार करती थीं। सत्या उसके आने से खुश ही थी, दोनों बड़ी उम्र की औरतें, साथ हो गया। कोई बात करने को हम उम्र तो मिला। माला ने भी दोनों समधिनों को नीचे का फैमिली रूम के साथ लगा कमरा दे दिया। उसे तसल्ली थी कि सास उल्टा उसकी माँ का भी ध्यान रखती थी।

दोनों माएँ क्योंकि अमरीका में कानूनी तौर से 'प्रवासी' होकर रह रही थीं तो उन्हें भी सरकार की ओर से मेडिकल सहायता के साथ-साथ थोड़ी सोशल-सिक्युरिटी भी मिल जाती। यूँ तो यहाँ के खर्चे के हिसाब से नगण्य-सी रकम थी, पर गुणा करने पर, रुपयों के हिसाब से काफ़ी थी। माला की माँ तो 'बेटी के घर रहती हूँ' कहकर उसमें से कुछ भाग माला को पकड़ा देती। नहीं तो जन्मदिन पर, नए साल पर बच्चों को तोहफों के पैसे दे देती। सत्या अपने पैसों को दृढ़ता से पकड़े रखती, उसका अपना हिसाब-किताब था। वह सोचती भारत जाऊँगी, इतने की तो टिकट ही आ जाएगी। फिर बहनों के लिए, भानजियों के लिए, जेठजी के बेटे-बेटी के लिए, आगे उनके बच्चों के लिए, छोटे-मोटे ही सही, तोहफ़े लेकर तो जाने पड़ेंगे न। चार-चार महीने उन्हीं सबके यहाँ जैसे-तैसे घूम-घूमकर पूरे करके आती हूँ। लौटते वक्त फिर अपनी जरूरत की चीज़ें भी तो लानी होती हैं। हर बार वह माला, मानिक और मोनिका के लिये भी तो अपनी हैसियत से बढ़कर तोहफ़े लाती है। माला की सहेलियों को हल्की-से ईर्ष्या होती, 'माला तेरी सास तो बहुत अच्छी है, तेरे लिए पश्मीने की शॉल लाई है और मोनिका के लिए इतने प्यारे, छोटे-से एक नग के हीरे के टॉप्स, वाह!'

माला अवहेलना से मुंह बिचका देती, 'और कौन है उनका? और किसके लिए लाना है भला!' पर अगर दूसरी ओर माला की माँ कुछ भी देती तो माला सबको फूल-फूलकर दिखाती।

सत्या को लगता कि माला हमेशा उसे नीचा करके, अपनी माँ को ऊपर उठाकर रखती है। कभी-कभी उसे एक कहावत याद आ जाती 'ऊंग ते सडूंग मेरी सस दा, ते घुँघर वाला नाड़ा मेरी माँ दा'। सास की दी हुई कीमती चीज़ भी फ़ालतू और माँ के दिए घुंघरू लगे इज़ारबन्द की भी वाह क्या बात है। चुप रहती सत्या, पर कभी-कभी माला और उसकी माँ के बीच बड़ी देर तक आत्मीयतापूर्ण खुसफुस होती देखकर उसके जी में ख्याल आता, काश मेरी भी एक बेटी होती, दिल की बात तो किसी से कह सकती।

माला का व्यवहार धीरे-धीरे बदलता जा रहा था। बच्चे किशोर हो गए थे, कॉलिजों में जाने की तैयारी शुरू हो गई। धैर्य और सहनशक्ति तो माला में कभी भी नहीं थी, पर अब उसकी खीज विस्फोटक होती जाती थी। जब उसकी माँ भी साथ होती, तब तो सिर्फ इतना ही खीजती कि, 'इस घर में इतने सारे लोग हैं, सब को बाहर कहाँ लेकर जाया जा सकता है। कार में छह लोगों की जगह नहीं है।'

अमला की माँ बुरा मान कर कहती, 'तो हम दोनों घर रह जाती हैं।' अमला भूल सुधार कर कहती, 'आपको नहीं कह रही हूँ?'

सत्या कभी-कभी जितेन्द्र के पास चली जाती तो हफ्ते बाद ही लौट आती, जैसे वहां से पिटकर आई हो। उसे इतनी जल्दी वापस आया देखकर माला खीज जाती। जब पहले वह कभी-कभी किशन और वर्षा के यहाँ जाती थी तब माला उसे फ़ोन पर फ़ोन किया करती थी, तब उसके बच्चे छोटे थे। कहती, 'अब कितने दिन और रहेंगी, मानिक बहुत याद करता है, परसों आ जाइए।'

इधर किशन की इतनी अच्छी नौकरी छूट गई, दूसरी मिल नहीं रही थी। दो जवान होते हुए बच्चे, घर का स्तर इतना ऊँचा कर रखा था कि अब निभाना मुश्किल हो गया। वह वर्षा पर झल्लाता, वर्षा पंजे झाड़कर वापस आक्रमण करती कि वह जानबूझकर कोई और नौकरी नहीं करना

चाहता। किशन सारा दिन कमरे में बैठा, बस जो भी चीज़ सामने पड़ जाती उसे घूरता रहता। डॉक्टर के पास ले गई वर्षा, पता लगा उसके दिमाग का सन्तुलन बिगड़ चुका है। कभी-कभी वह इतना आक्रामक हो जाता कि वर्षा को अपने को कमरे में बंद कर लेना पड़ता। जो जितने का भी घर बिका, उसने वही पैसे लेकर लोंस एंजेल्स जाने का फैसला कर लिया। सास के गले लग वर्षा रोई थी। वहां मेरा भाई तो है ना। उसके पास अलग से छोटा सा अपार्टमेंट भी है। अभी बुला रहा है तो कहता है, वहीं रह लेना। घर में बच्चे आये-दिन तमाशा देखते हैं, वहां शांति से पढ़ाई तो पूरी कर लेंगे, यहाँ कौन है हमारा? सत्या समझ गई, इशारा किस तरफ था? क्या कहती? किशन ने ज़िद पकड़ ली कि वह कैलिफोर्निया नहीं जायेगा। इतना पढ़ा-लिखा है, भारत वापस चला जायेगा और वहीं कुछ भी नौकरी कर लेगा। वर्षा बच्चों को लेकर भाई के पास चली गई तो किशन कुछ दिन हरीश के घर रह गया-भारत जाने से पहले।

सत्या देखती किशन को, तो कलेजा मुंह को आने को होता। इतना पढ़ा-लिखा, कमाऊ, हँसमुख आदमी, क्या हो गया? फिर एक दिन माला ने उसके सामने ही गुस्से में, पर आवाज़ दबा कर हरीश से कहा, 'निकालो इसको घर से, यह सारा दिन अजीब-अजीब निगाहों से घूरता रहता है। मेरे घर में जवान लड़की है, इसे जल्दी इंडिया भेजो, नहीं तो मैं ख़ुद जाकर कहती हूँ।'

हरीश दो-तीन दिन बाद ही उसे एयरपोर्ट जाकर, भारत के लिए हवाई-जहाज़ पर चढ़ा आया था। आकर वर्षा को भी फ़ोन कर दिया।

वर्षा ने भी कहा- 'चलो, अच्छा हो गया।' उसकी आवाज़ से लगा जैसी उसकी छाती पर से भी कोई वज़न सरककर भारत चला गया। माला बच्चों के लिये सलाद बना रही थी- सलाद के पत्ते हाथ से नोंच-नोंचकर तोड़े जा रही थी। सत्या चुपचाप देखती रही। पत्ता-गोभी की तरह लगते 'लैटस' के इस गोले का एक-एक पत्ता, परत-दर-परत खींचकर अलग होते हुए, जैसे कोई घोंसला नोंच-नोंचकर बिखेरा जा रहा हो।

माला हर वक्त काम ही करती रहती, कभी बाहर का और कभी घर का। हरीश को भी हिदायतें देकर जाती पर हरीश के बस का कुछ था ही नहीं। माला झींकती- 'आपसे कुछ होता है? घर आकर बाकी का सारा दिन अख़बार पढ़ने बैठ जाते हैं या टेलीविज़न पर खबरें देखने।'

'माला, मैं दफ्तर से आकर थक जाता हूँ। मुझसे जितना बन पाता है, कर देता हूं।'

'मैं नहीं थकती, मैं मशीन हूँ?'

जब दिल्ली में वह तीनों भाई दो कमरों के मकान में रहते थे तब किसी पड़ोसी ने भी उनके घर से कभी कोई ऊँची आवाज़ नहीं सुनी और अब? वह चुपचाप बड़ी देर तक बाहर आवारा घूमता रहा।

'तो तुम्हें कौन कहता है कि इतना खपो?'

'तो क्या सारी उम्र इसी तरह दड़बे में रहेंगे, यही खटारा कार चलाते रहेंगे। बच्चों को कल कॉलेज कैसे भेज़ोगे? तुम्हें क्या? घर में औरतों की तरह भी में ही खटूँ और बाहर मर्दों की तरह भी मैं ही कमाई करके लाऊं।'

बात हरीश के मर्म को लगी। खून का घूंट पीकर चुप रहा।

'तुम आगे क्यों नहीं पढ़ते? जरा अपना मूल्य बढ़ाकर ढंग की नौकरी तो करो।' हरीश उठकर अंदर चला गया और सत्या वहीं की वहीं जड़ बैठी रही। यूँ आये दिन माला हरीश का पानी उतारकर रख देती। सत्या को लगता जैसे थप्पड़ उसको लगता हो, वह प्रतिवाद भी ना कर पाती।

सिर्फ शनिवार की सुबह दो घंटे के लिये किसी स्थानीय चैनेल पर हिन्दुस्तानी प्रोग्राम आता था। वही कुछ खबरें, कुछ फ़िल्मी गाने और कोई भेंटवार्ता वगैरह। सत्या को वह दो घंटे बड़े सुखद लगते। हरीश भी पास आकर सोफे पर बैठ जाता। उसके जीवन की भागदौड़ में यह छोटे-छोटे पल उसे किसी पहचाने पेड़ की ठंडी छाया से लगते। आज सुबह भी वह दोनों टी.वी. देख रहे थे। माला बच्चों के साथ उपर बैठी नाश्ता कर रही थी। उन्हें हिदायतें देकर नीचे आई तो दोनों माँ-बेटे को टी.वी. देखते देख, आपा खो बैठी। झट से उसने टी.वी. बन्द कर दिया और उसके ऊपर रखा एंटेना उठाकर दूर बाहर की तरफ फेंक दिया।

हरीश गुस्से से कांप गया। 'माला, बदतमीजी की हद होती है।'

'तुम लोग इसी लायक हो।' फुंफकारती हुई वह ऊपर की ओर बढ़ी। हरीश कुछ कहने के लिए लपका। सामने दोनों जवान होते बच्चे चुप, सहमे खड़े थे। अब तक का दृश्य उन्होंने देख लिया था। उसी उबाल को थामे हरीश लौट पड़ा, घर से बाहर निकल गया। बच्चों के सामने वह कोई तमाशा नहीं करना चाहता था।

जब दिल्ली में वह तीनों भाई दो कमरों के मकान में रहते थे तब किसी पड़ोसी ने भी उनके घर से कभी कोई ऊँची आवाज़ नहीं सुनी और अब? वह चुपचाप बड़ी देर तक बाहर आवारा घूमता रहा। सत्या अपराधिन सी वहीं बैठी रही।

मन चोटों, अपमान और अवहेलना से भरा था पर हरीश तक कोई बात न पहुंचने देती, जानती थी उसे बहुत दुख होगा- विवशता भरा गुस्सा करेगा, बस।

उस दिन सत्या ने अपनी लांड्री खुद करने के लिए मशीन में कपड़े डाले, पास रखे साबुन के डिब्बे से साबुन भरा ही था कि माला ने उसे देख लिया। बड़ा बेधता हुआ प्रश्न किया, 'आपने साबुन कहाँ से निकाला?'

सत्या ने डिब्बे की और इशारा कर दिया।

'आपको पता नहीं लगता कि यह बढ़िया कपड़े धोने के लिए साबुन है, आपके गूदड़ धोने के लिये नहीं।'

उसने जल्दी-जल्दी हाँफते हुए सत्या के कपड़े मशीन में से निकालकर बाहर फ़ेंक दिए और उसमें अपने और मोनिका के बढ़िया कपड़े डालने शुरू कर दिए। अपमानित-सी सत्या एक तरफ खड़ी उसे देख रही थी। बाहर के लोगों के सामने इतनी पढ़ी-लिखी, कमाऊ, मिलनसार, मददगार और मेहमान-नवाज़ माला ने एक मुट्ठी भर साबुन के चूरे के लिए उसका पानी उतारकर रख दिया। कांपती आवाज़ में हिम्मत करके बोली, 'माला, मुझसे तू आज ऐसे बोली, अगर तेरी माँ यहाँ होती, तो उससे कभी तू ऐसे नहीं बोलती!'

'मेरी माँ से मुकाबला मत करो, तुम तो उसके पाँव की जूती की बराबरी भी नहीं कर सकतीं।'

माला ने अपना नकाब पूरी तरह से उतार दिया था।

सत्या बस सोचती ही रहती कि कहाँ जाए? अब कहाँ जाए?

उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा तो हरीश और उसकी गृहस्थी की ही देखभाल में बिता दिया। जितेन्द्र दिल का मरीज़ है और उसकी पत्नी कर्कशा। एक बार हरीश ने जबर्दस्ती उसे टिकट दिलवाकर वर्षा के पास भिजवा दिया था। यह कह कर कि जाओ थोड़े दिन मिल आओ। जाकर सत्या का मन और भी दुखी हुआ। वर्षा ने भी छोटी-मोटी नौकरी करनी शुरू कर दी थी। किशन खुद हाल-बेहाल भारत में नौकरियाँ करता-छोड़ता घूम रहा था। इधर वर्षा की कमर में बहुत दर्द रहने लगा था। भाई-भाभी अच्छे थे, किसी तरह उनका हाथ पकड़कर, गृहस्थी घसीट रही थी। बहुत छोटा सा अपॉर्टमेंट, सत्या उन पर और जाकर बोझ बन गयी। महीना भर काटकर वापस लौट आई।

पता नहीं क्या हो गया था? माला को उसे देखकर ही जैसे भूत चढ़ जाता। एक दिन सत्या ने बड़ी हिम्मत करके पूछा, 'माला, अब तुझे क्या हो गया है जो मैं तुझे फूटी आँख नहीं सुहाती। पहले तो तू ऐसी नहीं थी।'

'मैं तंग आ चुकी हूं तुमसे।' आखिर माला ने साफ़ उसके मुँह पर कह ही दिया। पहले वह सिर्फ उसकी पीठ-पीछे अपने मिलनेवालों से ही कहती थीऊ

'जब से ब्याही हूँ, आप हमेशा मेरे साथ ही चिपकी हैं, हर वक्त! कोई प्राइवेसी ही नहीं है मेरी इस घर में - अपने पति और बच्चों के साथ।'

'मैं तो तुम्हें कुछ नहीं कहती, तुम जो मर्जी करो। चुपचाप ही रहती हूँ।'

'चुप कहाँ रहती हैं? कोई भी घर में बात हो, आप पूरा सुराग रखती हैं। मोनिका कब घर आई, किसके साथ आई? आपको हर बात में दिलचस्पी होती है। कोई मेरा मिलनेवाला आए, आप पाउडर-वाउडर लगाकर, साड़ी दमकाकर बीच में आ बैठती हैं।'

सत्या थूक गटककर चुप हो गयी। जिसे वह अपनी सुरुचि समझती थी, उसे आज उसकी बहू ने सड़क-छापवालियों की कतार में बिठा दिया।

माला को बहुत शिकायतें थी सत्या से। उसका पक्का विश्वास था कि जब वह सारा दिन काम के सिलसिले में बाहर रहती है तो उसकी सास उसके घर के कोने-कोने में घूमकर तलाशी लेती रहती है। घर माला का है, पर पता सब कुछ सास को है।

हरीश के आते ही सत्या एकदम रसोई में आ जाती। पूछती-चाय बनाऊँ? माँ-बेटे अगर चाय पी रहे होते और ऊपर से माला आ जाती तो सीधे माथे पर बल डालकर अपने कमरे में चली जाती और सत्या चुपके से नीचे खिसक आती। उसे समझ ही नहीं आता था कि पत्नी की गैर-हाजिरी में घर आए बेटे को चाय पिलाने में कहाँ गलती हो गयी?

सत्या बेटे-बहू के घर में अदृश्य रहने की बहुत कोशिश करती। माला के आने से पहले ही खाना बनाकर, रसोई साफ़ करके नीचे अपने कमरे में आ जाती। उसे मालूम था कि माला को सफाई की सनक थी। कभी-कभी हरीश कहता भी, 'माला, तू खाना कम बनाती है और सफाई ज्यादा करती है।' माला अनसुना कर, दोनों बच्चों को लेकर शॉपिंग करने निकल जाती। अब तो माला छुट्टियाँ होने पर कुछ दिनों के लिए बच्चों के साथ बाहर भी चली जाती। देखनेवालों को

> *बाहर के लोगों के सामने इतनी पढ़ी-लिखी, कमाऊ, मिलनसार, मददगार और मेहमान-नवाज़ माला ने एक मुट्ठी भर साबुन के चूरे के लिए उसका पानी उतारकर रख दिया।*

अजीब लगता कि यह कैसी पति-विहीन 'वैकेशन' है।

वापस लौटती तो वही सत्या। माला बोली, 'मॉसीजी, आप भी कुछ दिन दूसरे बेटों के पास हो आओ।' सत्या विमूढ़-सी देखती रही। फिर सफाई देते हुए बोली, 'कहाँ जाऊं? जितेन्द्र दिल का मरीज़ है, रिटायर्ड होकर घर बैठा है और तुझे पता है राधा किसी और को सह नहीं सकती।'

'क्यों, अपनी बहन से तो बड़ी पटरी बैठती है उसकी।' सत्या चुप रही।

'तो फिर वर्षा के यहाँ ही हो आओ। वह तो बड़ी अच्छी बहू है न आपकी।' शायद माला ने व्यंग्य में कहा पर सत्या ने लगभग घिघियाकर ही उत्तर दिया, 'जब वहां बेटे के लिये ही जगह नहीं तो मैं वहां जाकर कैसे रह सकती हूँ? उनका अपना तो गुजारा चलता नहीं।'

'तो क्या, हमने ही आपका ठेका ले रखा है?' माला आपा खो बैठी थी। 'पैसों पर क्यों कुंडली मारकर बैठी हो? जो सोशल-सिक्युरिटी मिलती है उसे वर्षा को क्यों नहीं दे देतीं और फिर रहो सास-बहू दोनों मिलकर।'

'माला, जवानी में जब तुम्हें मेरी जरूरत थी, बच्चों की बेबी-सिटिंग करवानी थी, तब तो मुझे रखे रखा और अब मुझे दूसरे दरवाजे दिखा रही हो।' मन में घुमड़ती बात आज सत्या ने भी कह ही दी।

'यही तो मैं कहती हूँ कि मैं तंग पड़ गयी हूँ, सबको ढोते-ढोते। बाकी दो बेटे और भी तो हैं? कोई और रखता है भला आपको?'

'अगर हरीश के बाबूजी आज ज़िन्दा होते तो तुम लोगों को कभी मेरा बोझा नहीं ढोना पड़ता।' सत्या बेचारगी से रोने-रोने को हो गई।

'इंडिया में मेरी भाभी भी तो भैया के चले जाने के बाद रहती है। मैं अगर तुमारी जगह होऊं तो अपनी बहनों के पास ही एक कमरा लेकर आराम से रहूँ।'

हरीश कब से खड़ा उनकी बातें सुन रहा था।

'तू सधवा हो या विधवा, तुझे कोई फ़र्क नहीं पड़नेवाला।' माला की तरफ गोली दागकर, वह ऊपर अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद जब माला बेडरूम में आई तो हरीश का तना मुँह और अख़बार में गढ़ी आँखें देखकर समझ गई कि आज फिर वह ख़म खाए बैठा है। ताना कसकर बोली, 'आज कैकेयी जल्दी ही कोप-भवन में आ गई।'

हरीश ने धीमे-धीमे पर दृढ़ता से कहना शुरू कर किया- 'माला, मैं साफ़ जानता हूँ कि जब तुम्हारी माँ यहाँ होती है तो तुम कैसा बर्ताव करती हो और मेरी माँ के साथ कैसा करती हो। जवान बच्चे हैं, इसलिये मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता कि उन पर क्या असर पड़ेगा?'

'मैंने कहा न कि मैं तंग आ चुकी हूँ उनसे।'

'भगवान से डरो, कल को यह हालत तुम्हारी भी हो सकती है। बाबूजी हैं नहीं, बाकी भाइयों से मुझे क्या लेना-देना? मैं अपना फ़र्ज़ पूरा कर रहा हूँ नहीं तो मैं अपने को आईने में कैसे देख पाऊँगा।'

'और मेरे लिए तुम्हारा कोई फ़र्ज़ नहीं है?' माला कटुता और चोट छुपा नहीं पा रही थी।

'तुम्हारे और उनमें मुकाबिला ही कहाँ है? तुम अपनी जगह सारे घर पर राज कर रही हो, वह बेचारी तो अपनी जगह बैठी हैं।'

हरीश ने फिर दृढ़ता से बात पूरी कर दी, 'उन्हें फिर कहीं जाने को मत कहना, वह यहीं रहेंगी।'

माला तिलमिला गयी।

'इतने ही माँ के हमदर्द हो तो जाओ, वहीं जाकर क्यों नहीं सोते?'

हरीश का हाथ उठा और हवा में ही कांपकर कर रह गया। निर्लज्जता का यह वार सह पाने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी। वह तकिया उठाकर बाहर निकल आया और सोफे पर गिरकर उसने अपना मुँह तकिए में छुपा लिया।

बाहर सर्दी बढ़ती जाती थी और घर के अन्दर तनाव। आजकल हरीश सुबह का काम के लिये निकला, देर गए रात को लौटता। उसने पास के स्थानीय कॉलेज में कुछ कोर्स ले लिए थे। खाना भी बाहर से ही खाकर लौटता। घर में बोझिल-सी चुप्पी थी। सत्या को माला ने खाना बनाने को मना कर दिया था।

हम लोग रोज-रोज भारी हिन्दुस्तानी खाना नहीं खा सकते और उससे जो रसोई में गन्दगी मचती है मुझसे झेली नहीं जाती।

सत्या उसकी तरफ टुकुर-टुकुर देखती रही, 'तो मैं क्या खाऊँगी?'

'जो आपका जी चाहे।' माला ने वैसे ही बेलाग-सा जवाब दे दिया। आज सत्या सारा दिन परेशान रही। उसे सुबह और शाम के वक्त चाय पीने की आदत थी। घर में दिन-भर कोई होता भी नहीं। वह चाय की पत्ती ढूंढ-ढूंढकर कर परेशान होती रही। इतने में उसकी पुरानी पड़ोसन का फ़ोन आ गया। हम-उम्र चन्दर की माँ उसका हाल पूछ रही थी।

'देख, आज माला चाय की पत्ती पता नहीं कहाँ छुपा गयी है?' उसके मुँह से दिल की बात निकल ही गई।

"हरीश का हाथ उठा और हवा में ही कांपकर कर रह गया। निर्लज्जता का यह वार सह पाने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी। वह तकिया उठाकर बाहर निकल आया और सोफे पर गिरकर उसने अपना मुँह तकिए में छुपा लिया।"

> देखो मॉसीजी, मैं आपको बहुत अच्छे तरीक़ेसे बता रही हूँ कि मेरे बच्चे अब बड़े हो गए हैं। अब हमें भी परिवार की तरह वक्त चाहिए। मुझे आपका पाँचवें सवार की तरह हर वक्त बीच में होना अखरता है।

'लगती तो नहीं तेरी बहू ऐसी? कल हमारे यहाँ आना, थोड़े दिन रह जा। दोनों बहनें इकट्ठी बैठकर चाय पिएंगी। मेरी बहू बहुत अच्छी है।'

सत्या चुप ही रही। माला ने उसे समझा दिया था, 'देखो मॉसीजी, मैं आपको बहुत अच्छे तरीक़ेसे बता रही हूँ कि मेरे बच्चे अब बड़े हो गए हैं। अब हमें भी परिवार की तरह वक्त चाहिए। मुझे आपका पाँचवें सवार की तरह हर वक्त बीच में होना अखरता है। कई बार बच्चों को भी अपनी निजी बातें करनी होती हैं, आपकी मौजूदगी में बात खुलकर नहीं हो पाती। इसलिए जब हम हरीश के आने पर चारों ऊपर बैठकर खाना खा रहे हों तो आप उस वक्त हमारे बीच टेबल पर न बैठा करें। हमारे घर आने से पहले ही खाना खाकर निबट लिया करें।'

माला की हिदायतें बड़ी स्पष्ट थीं पर सत्या को यह नहीं समझ में आता था कि शाम पाँच बजे ही वह कैसे रात का खाना खाकर निबट ले?

खाने की मेज पर बैठते ही हरीश ने माँ को आवाज़ लगाई, 'माँ, ऊपर आकर खाना खा लो।'

सत्या ने भी नीचे से ही उत्तर दिया, 'नहीं हरीश, मुझे भूख नहीं, बाद में खा लूँगी।'

सबके रसोई से जाने के बाद सत्या ऊपर आई। माइक्रोवेव में एक प्याली दूध गर्म करके, उसमें ब्रेड की स्लाइस के टुकड़े डालकर खाने बैठी तो पहली बार सूनी-सूनी रसोई की भयावहता उसे निगलने लगी। छत की तरफ देखती रही। ब्रेड के टुकड़ों के साथ भर आई आँखों का पानी और यह अहसास कि घर के दूसरे कोने में उसी का परिवार उससे बेखबर बैठा है। वह सब कुछ अपने भीतर गटकने की कोशिश करती रही।

घर में तनाव की स्थिति इतनी बढ़ चुकी थी कि एक ही घर में तीन इकाइयां हो गयीं। माला, मोनिका और मानिक-उनकी अपनी अलग खुसर-फुसर। हरीश अपना सबसे अलग-थलग और बीच में अपने को फालतू जानकार भी ढीठ मजबूरी में डोलती-सी सत्या। तनाव का यह बुलबुला सारे घर के प्राणियों के लिये दमघोटूं था। फिर पता नहीं कैसे क्या बात हुई कि हरीश ने आकर कहा, 'माँ कुछ दिनों के लिये भारत हो आ, बदलाव हो जाएगा और लौटती बार कैलीफोर्निया वर्षा के पास चली जाना। कम से कम इस मुल्क में तो रहोगी, तुम्हारा 'ग्रीन कार्ड' बना रहेगा।'

सत्या ने भी सोचा, ठीक ही रहेगा। दमयन्ती की भी तबियत अब ठीक नहीं रहती और शकुन्तला तो कब से दिल की मरीज़ है। बहनों से मिलकर चार महीने बिता आऊँगी। अब वही चार महीने भारत में काट कर, लौटती बार वह वर्षा के यहाँ रह गई। धीरे-धीरे किशन और वर्षा का भी सम्बन्ध समाप्तप्राय ही था पर कानूनी तौर से वह अभी भी उसका पति था। बच्चे भी कभी बाप की कोई चर्चा नहीं करते थे। वर्षा खुद बीमारियों से घिरी किसी तरह गुज़ारा चला रही थी। सत्या बेशर्मों की तरह वहां एक महीना रह तो ली पर लगता था कोई सम्बन्ध तो नहीं रहा। जब उसका अपना बेटा ही मानसिक रोगी बनकर भारत में जगह-जगह भटकता फिर रहा है, अपने ही परिवार से कटकर भुलाया हुआ, तो फिर बहू कैसी? कैसा अधिकार? कैसा सम्बन्ध? फिर भी वर्षा ने न रहने को कहा और न ही जाने को। सत्या ने ही हरीश को फ़ोन करके कह दिया कि वह न्यूयार्क मंगलवार को पहुंच रही है।

आज ही वह पहुंची थी। हरीश उसे एयरपोर्ट से घर ले आया। उसने आधे दिन की छुट्टी ली थी, इसलिए जल्दी ही घर आ गया, माला के आने में अभी देर थी। हरीश भारत के सभी रिश्तेदारों का हाल पूछता रहा, वर्षा और उसके परिवार का भी, पर कुछ उखड़ा-उखड़ा सा लगता था। उसने माँ को चाय भी बनाकर पिलायी। सामान अभी नीचे फैमिली रूम के मध्य में ही रख छोड़ा था। फैमिली रूम का एक दरवाजा सत्या के सोने के कमरे में खुलता था और दूसरा गैराज में। दरवाजे के साथ लगी सीढ़ियां गैराज से सीधे ऊपर रसोईघर और सोने के कमरों तक पहुंचा देती थीं।

हरीश के कान गैराज के दरवाजे की ओर व्यग्रता से लगे थे। आज उसने माला को माँ के आने के बारे में नहीं बताया था। माला ने उसे साफ़-साफ़ कह दिया था कि इतनी जान मार-मारकर घर उसकी माँ के लिए नहीं बल्कि अपने बच्चों के लिये बनाया है। वह अपने हिस्से का फ़र्ज़ पूरा कर चुकी है, बस अब और नहीं। हरीश में अगर इतनी मातृभक्ति है तो वह भी जाकर अपनी माँ के साथ रह सकता है। न वह सास को अपने पास रखेगी और न ही बच्चों के हिस्से के पैसे उसकी माँ को देगी। बस बहुत हो चुका।

हरीश को माला की बात भी बहुत ग़लत नहीं लगती थी पर वह माँ के प्रति अपने को उत्तरदायी समझता था। कैसे, कहाँ छोड़ दे उसे? कहाँ जाएगी वह इस उम्र में, इस गिरती सेहत में? अमरीका में अप्रवासी रूप से रहने से उसे जो सरकार की ओर से पैसे मिलते थे उससे वह किसी भी बेटे पर बोझ नहीं थी। उल्टे, इतनी अच्छी चिकित्सा की सुविधाएँ भी

निःशुल्क मिली हुई थीं। डॉक्टरों के पास ले जाना हरीश को खलता नहीं था। माला भी तो अपनी माँ को डॉक्टरों के पास खुद ही परीक्षण के लिए ले जाती थी। भारत में माँ को कौन डॉक्टर के पास ले जाएगा, खर्चा ऊपर से अलग। यही सोच कर वह समझौता करवाने की कोशिश में था।

गैराज का दरवाज़ा खुला। सुबह की थकी-मांदी माला के घर में घुसते ही, फ़ैमिली रूम में बेतरतीब पड़े सूटकेसों ने सब चुगली कर दी। दनदनाती हुई सीढ़ियां चढ़कर रसोई में पहुँची। चरण-स्पर्श तो सास के शायद उसने कभी भी नहीं किए थे, सीधी नज़र से उसने दोनों माँ-बेटे को देखा। सत्या धीरे से बुदबुदाई, 'नमस्ते, माला।'

माला की कनपटियों पर जैसे हथौड़े पड़ रहे थे, वहां कुछ भी सुनने की गुंजाइश नहीं थी। बस उसने एक बार हरीश को देखा। उस दृष्टि से हरीश भीतर तक सिहर गया।

'तुमने सोचा मैं यूँ ही कह रही हूँ।' उसने सिर उठाया, जैसी आखिरी अमोघ फुंफकार छोड़ रही हो। 'वट एवर आई सैड, आई मेन्ट इट।' वह तेजी से पलटकर नीचे उतरी। पीछे-पीछे हरीश था और यन्त्रवत सत्या भी नीचे आ गई। माला ने पूरे गुस्से से सूटकेसों को धकेलकर गैराज में फेंक दिया। हरीश एक-दो बार चिल्लाया, 'माला, माला!'

शारीरिक शक्ति से उसे रोक सके, वह उसके रक्त में नहीं था। माला पूरे उफ़ान पर थी। सूटकेस भारी थे पर हैंडबैग तो नहीं। उसने बैग को उठाया और पूरे ज़ोर से घर के बाहर ड्राइव-वे पर फ़ेंक दिया। बैग के अन्दर से कुछ टूटने की आवाज़ आई, शायद 'रूहअफजा' की बोतल थी जो सत्या दिल्ली से मानिक के लिए लाई थी।

जो कुछ घटित हुआ, उसके धक्के से सत्या अवाक कांप रही थी। हरीश बस देख रहा था, ड्राइव-वे पर फेंका गया माँ का सामान, शायद पड़ोसियों ने भी देखा होगा। उसे लगा जैसे आज किसी ने भरे बाज़ार में उसे नंगा करके खड़ा कर दिया हो।

माँ का हाथ थाम कर वह उसे उसके कमरे तक ले आया। सोफे पर बिठाकर बस कन्धा ही थपथपा सका। खुद बाहर फैमिली रूम में आकर बैठ गया, जैसे घर में कोई मौत हो गई हो, एक बहुत शर्मनाक मौत। थोड़ी देर बाद उसे जैसे होश आया, यह वक्त शोक करने का नहीं, दाह-क्रिया की तैयारी करने का था। आज बची-खुची मर्यादा ने भी उसके ड्राइव-वे पर दम तोड़ दिया था।

हरीश ने आकर धीरे-से माँ के घुटनों को छुआ तो सत्या ने अपनी निरीह दृष्टि उस पर टिका दी। 'उठो' हरीश ने कहा तो वह यन्त्रवत-सी उठ गई। गैराज का भी सूटकेस उठाकर उसने ड्राइव-वे पर पड़े सामान के साथ रख दिया। माँ को संक्षिप्त सा उत्तर दिया, 'चन्दर के यहाँ चल रहे हैं।'

हरीश ने उसी गाड़ी में सामान वापस रखा, जिसमे थोड़ी

जैसे घर में कोई मौत हो गई हो, एक बहुत शर्मनाक मौत। थोड़ी देर बाद उसे जैसे होश आया, यह वक्त शोक करने का नहीं, दाह-क्रिया की तैयारी करने का था। आज बची-खुची मर्यादा ने भी उसके ड्राइव-वे पर दम तोड़ दिया था।

देर पहले वह उसे एयरपोर्ट से लेकर आया था। सहारा देकर माँ को पीछे की सीट पर बिठाया। धीरे-से गाड़ी पीछे की, फिर मोड़कर सीधी की तो सत्या के मुँह से अचानक निकला -'ठहरो।' हरीश को असमंजस हुआ, किसको रोकना चाह रही है माँ। सत्या ने एक भरपूर नज़र घर पर डाली, जहाँ इतने वर्षों का आना-जाना था। कोई हमेशा के लिये छूटती चीज़ को जिस शिद्दत से देखता है, वैसे ही। जैसे उसने एक पल के लिये अपने क्रन्दन को रोककर, हमेशा के लिये जाते हरीश के बाबूजी को भी देखा था।

किसी खिड़की पर कोई चेहरा भी नहीं उभरा।

'चलो' सत्या ने जैसे 'अलविदा' कह दिया।

टिकट का, जाने का सारा प्रबन्ध करके, हरीश माँ को चन्दर के घर से लाकर एअरपोर्ट छोड़ आया था।

'सॉरी माँ, मैं मजबूर हूँ, तुम्हें यहाँ नहीं रख सकता। मैं वादा करता हूँ, हमेशा तुम्हें पैसे भेजता रहूँगा, फ़ोन करता रहूँगा। तुम्हें वहां कोई तकलीफ नहीं होगी। वहां अब किशन है और छोटे मौसाजी भी हैं, सब तुम्हारा ख़्याल रखेंगे।' फिर धीरे से बुदबुदाया, 'मैं तो नहीं रख सका।' प्रकाश की आखें बेबसी से या ग्लानि से भर आईं।

सत्या अज्ञात-सी आशंका से जड़प्राय थी। वैसे ही प्लेन में भी बैठी रही। तकदीर उसे हवाई जहाज़ के इन पंखों पर बैठाकर पता नहीं किस अनजान भविष्य की ओर पटकने जा रही थी। गुमसुम दिल्ली के हवाई-अड्डे से बाहर निकली तो बाहर अजनबी चेहरों की भीड़ देखकर सिहर गई। कौन आया होगा उसे लेने? किसी को क्या मालूम? वह यूँ ही बढ़ी जा रही थी कि आवाज़ आई, 'मॉसीजी।'

किसी ने कन्धे पर हाथ रखा- अशोक था, दमयन्ती का बेटा।

हरीश भाईसाहब ने फ़ोन कर दिया था। अब मम्मीजी भी आईं हैं, मानी नहीं।'

दूर वॉकर के सहारे दमयन्ती खड़ी थी। सत्या को लगा जैसे उसका कलेजा ही उलट गया हो। इतने लम्बे अरसे की जमी बर्फ़ की तहें जैसे चटखकर टूट गई थीं। वह दौड़कर दमयन्ती के गले से लिपट गई। ऐसे फफक-फफककर रोई की दमयन्ती भी घबरा गई, 'बहनजी, क्या हो गया?'

'दमी, उस दिन नहीं, पर आज मैं सचमुच विधवा हो गयी।'

दमयन्ती की समझ में कुछ नहीं आया, बस सत्या का कन्धा थपथपाती रही।■

विश्व हिन्दी संस्थान की स्मरणीय साहित्यिक संध्या

विगत दिनों मिसीसागा, कनाडा में विश्व हिन्दी संस्थान द्वारा हिन्दी भाषा एवं साहित्य के वर्चस्व को विश्व व्यापी रूप देने के उद्देश्य से सत्य ज्योति सांस्कृतिक केन्द्र में काव्य माधुरी साहित्यिक संध्या का आयोजन किया गया।

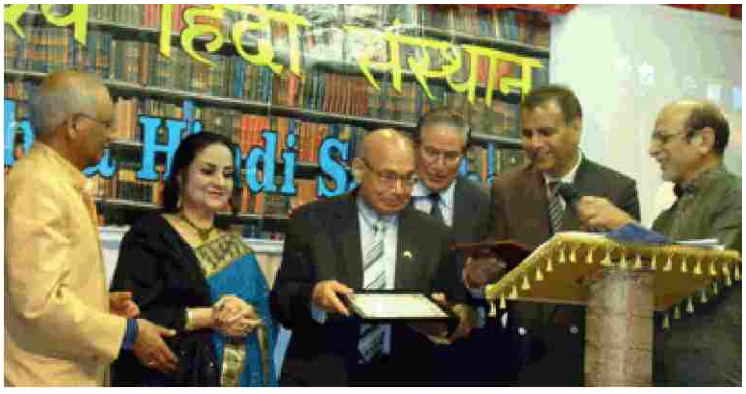

साहित्यिक संध्या के प्रारंभ में टोरोंटो शहर तथा आसपास से आये कविगणों ने अपनी मौलिक रचनाओं का पाठ किया। इसके बाद विशेष रूप से भारत एवं अन्य देशों के कवियों की उन रचनाओं का पाठ किया गया, जिन्हें इस अवसर के लिये भेजा गया था। कविता पाठ के पूर्व अनुपस्थित कवियों का संक्षिप्त परिचय और चित्र द्वारा एक अद्‌भुत सामंजस्य उत्पन्न हुआ जिसने प्रस्तुति में चार चांद लगा दिये। इस अनोखी कवि वाटिका के सुरभित एव सुगन्धित पुष्प थे : सर्वसुश्री सरोज भटनागर, राज कश्यप, कृष्णा वर्मा, सुधा मिश्रा, सविता जैन, लता पांडे, मीना चोपड़ा तथा सर्वश्री भारतेन्दु श्रीवास्तव, भगवत शरण, गोपाल बघेल, हरजिन्दर सिंह, हरभगवान शर्मा, कुलदीप सिंह, पंकज शर्मा, सरन घई, संदीप त्यागी एवं देवेन्द्र मिश्र। इस कार्यक्रम की झलकियां यूट्यूब पर देखी जा सकतीं हैं।

> विश्व हिन्दी संस्थान कनाडा में बसे हिन्दी विद्वानों को उनकी विशिष्ट उपलब्धियों के लिये यह सम्मान प्रदान करता है।

इस अवसर पर विश्व हिन्दी संस्थान की ओर से प्रोफ़ेसर देवेन्द्र मिश्र को उनकी हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सेवाओं के लिये आजीवन सेवा सम्मान द्वारा 'विश्व कवि' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

उल्लेखनीय है कि विश्व हिन्दी संस्थान कनाडा में बसे हिन्दी विद्वानों को उनकी विशिष्ट उपलब्धियों के लिये यह सम्मान प्रदान करता है। कार्यक्रम में सरन घई, संदीप त्यागी तथा अंकिता घई ने बड़ी कुशलतापूर्वक मंच संचालन के दायित्व को निभाया। सुभाष शर्मा ने निःशुल्क फोटोग्राफी की सेवायें प्रदान कीं। अंत में सभी ने श्री हनुमान मंदिर के सौजन्य से सहभोज का आनंद उठाया।■

रपट : प्रोफ़ेसर देवेन्द्र मिश्र

अटलान्टा में विवेकानन्द जयंती

वेदांत के प्रायोगिक संदेश देने वाले एकनिष्ठ संन्यासी स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जयंती के अवसर पर १२ जनवरी, २०१३ को अटलान्टा में भव्य समारोह हुआ। इस अनुष्ठान का ध्येय था स्वामीजी के अद्वितीय आध्यात्मिक चिंतन, दर्शन और मानव-सेवाभाव को प्रदर्शित किया जाए और नई पीढ़ी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाए। कार्यक्रम में बच्चों और युवा छात्रों को स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए प्रोत्साहित किया गया। स्वामीजी का बचपन, युवाकाल, श्री रामकृष्ण परमहंस जी से मिलन, देश-सेवा और मानव-सेवा के लिए उनकी लगन, सभी वर्णन प्रभावक थे।

स्वामीजी के पहनावे में सजी एकदम स्वामीजी-सी लगती एक बालिका ने उनके जीवन की घटनाओं पर पावर पाइंट प्रदर्शन के जरिये उनके व्यक्तित्व के बहुआयामी पहलुओं पर प्रकाश डाला। अन्य बालकों ने भी भिन्न-भिन्न विषयों पर स्वामीजी के गूढ़ विचारों को समूह के सामने प्रदर्शित किया।■

प्रस्तुति : विजय निकोर, अटलान्टा

गर्भनाल का जनवरी २०१३ अंक अतिउत्तम और पठनीय है। लेख, कविता, विचार सभी रुचिकर लगे। विविध सामयिक विषयों पर लेखों का समावेश अच्छा बना है। विशेषकर स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन पर २ लेख उनकी १५०वीं जयन्ती के अवसर पर बहुत ही उपयुक्त हैं और गर्भनाल ने उनको उचित मान दिया है। स्वामीजी के उच्च विचार और उनके योगदान के लिए हम सभी सदैव उनके आभारी रहेंगे। 'बातचीत' में आपका डॉ. रूपर्ट स्नेल से बात करना अच्छा लगा। उन्होंने यह साक्षात कर दिया है कि लगन से कोई कैसे एक नई भाषा का पंडित बन सकता है। गर्भनाल जैसी उच्च स्तर की पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपको साधुवाद!

विजय निकोर, अमेरिका

गर्भनाल परिवार को नूतन वर्ष के अनेकानेक बधाइयां। यह पत्रिका एक बहुत ही ऊंचे विचारों वाली, मोहक और पठनीय पत्रिका है जिसको पढ़ने का चाव निरंतर बढ़ता जाता है।

अचल वर्मा, यू.के.

Happy new year and all magazine family thanks for 74 issue. I am in USA will be in India on 7th Jan after reading I will send my reactions your panchtantar and all matter was good congratulation.

Joginder, USA

हमेशा की तरह एक बढ़िया अंक। रूपर्ट स्नेल के साथ साक्षात्कार बढ़िया है। इसलिए कि उस व्यक्ति ने बिना किसी लाग-लपेट के साफ बात कहीं है जो तथाकथित हिंदी सेवकों द्वारा ओढ़ी हुई महानता के गर्व में दिए गए वक्तव्यों की तुलना में आँखें खोलने वाली सचाई है।

रमेश जोशी, अमेरिका

गर्भनाल के जनवरी-२०१३ अंक में श्री ब्रजेन्द्र श्रीवास्तवजी का लिखा 'अपरिग्रह' बहुत पसंद आया। आज के समाज में इसकी विशेष आवश्यकता है, विशेष तौर से नयी पीढ़ी में। श्री राजशेखरजी का स्वामी विवेकानन्द पर लिखा गया स्मरण बहुत प्रभावशाली और मार्गदर्शक है। विनय मोघे का 'सामयिक' भी पसंद आया। प्रख्यात हिन्दी प्रेमी डॉ. रूपर्ट स्नेल से आत्माराम शर्मा की बातचीत भी बहुत रोचक लगी। राजकिशोरजी का सीधा सटीक वक्तव्य मुझे सदैव ही उद्वेलित करता है। कहानी कवितायें सभी उच्च कोटि की हैं।

आशा मोर, त्रिनिदाद

गर्भनाल ई-पत्रिका भेजने के लिये धन्यवाद। विवेकानंदजी की एक सौ पचासवीं जन्म शताब्दी पर उनके बहुत सुंदर शब्द 'सभी ईसा की तरह बनो हो सकता है किसी का जन्म चर्च में हो उसे चर्च में मरना नहीं चाहिए।' स्मरण हो आये। शिकागो के मैकोर्मिक भवन आते जाते माथा स्वयं ही झुक जाता है।

१९९३ में आयोजित विश्व साधू सम्मलेन में मैं नहीं जा सकी यही लेकिन सुना था कि भारत से सबसे अधिक साधु प्रतिनिधि आये थे और स्वामी विवेकानंदजी के भाषण दोहराये गये। सभी झूम उठे। पंद्रह मिनट तक तालियां सभा हाल में बजती रहीं। गंगानंद झा जी का सम्पादकीय विचारोत्तेजक होता है, उन्हें साधुवाद।

गुड्डो दादी, शिकागो

गर्भनाल के जनवरी-२०१३ अंक में, 'आपकी बात' के अंतर्गत बबिता वाधवानीजी का हिम्मत भरा कार्य बहुत सराहनीय है। छोटे कार्य हम जब स्वयं करने लगेंगे तो हमें नन्हें बच्चों को जबरन 'नौकर' बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी और इस तरह बच्चों को अपनी उमंग पूरा करने का मौका मिल सकेगा। स्वेच्छा से किए गए कार्य की बात और है, जिससे कि बच्चे के व्यक्तित्व का विकास हो सके। जैसा कि हम अमेरिका में देखते हैं। बच्चे बेबी सिटींग, स्नो शोउवेल्लिङ्ग, अखबार बांटने जैसे कार्यों से कुछ पैसे प्राप्त करते हैं लेकिन उनकी पढ़ाई में कोई व्यवधान नहीं आता।

माधवी, अमेरिका

आपके द्वारा भेजा गया गर्भनाल पत्रिका का जनवरी-२०१३ अंक पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। विषय-वस्तु और संयोजन की दृष्टि से इसमें छपा हर आलेख वाकई नायाब है। मानो बंद आँखों के स्पर्श से जागे हुए किसी अनुभूति से भरे मौन के जैसा कुछ। आपके द्वारा किये गए वैचारिक शब्द चिंतन के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

अमित कल्ला, जयपुर

गर्भनाल के पीडीएफ संस्करण लगातार मिल रहे हैं। हर अंक में पठनीय सामग्री होती है। अपरिहार्य कारणों से विस्तृत पत्र नहीं लिख पाता हूं। आप और आप की टीम का यह साहित्यिक प्रयास सहज वंदनीय है। शब्द-ज्योति को ज्योतिर्मय रखियेगा।

नवीन सी. चतुर्वेदी, मुंबई

आपकी गर्भनाल पत्रिका प्राप्त हुई और पढ़ी भी। राजशेखरजी द्वारा स्मरण (युग प्रवर्तक-स्वामी विवेकानंद) को पढ़ने पर मन को सुकून मिला और विनय मोघेजी का 'क्या आप है धनी नंबर वन' बेहद रोचक लगा। साथ ही प्रो. डॉ. पुष्पिता अवस्थी की कविता पसंद आई। सच कहूँ तो सभी की कविताएं प्रसंशनीय, सराहनीय एवं संग्रहणीय हैं। कुशल संपादन हेतु बधाई स्वीकारें। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की अशेष शुभकामनायें।

कीर्ति श्रीवास्तव, भोपाल

गर्भनाल के पिछले अंक में एक विदेशी विद्वान का आपके द्वारा लिया गया साक्षात्कार पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुयी। आपने जिस तरह से कहानी के मर्म को समझा है और जिस तरह आप हिन्दी के लिए लगातार प्रयत्नशील हैं वही हम लोगों का हौंसला बढ़ाता है।

सोमनाथ डनायक, कानपुर

गर्भनाल का जनवरी-२०१३ अंक भेजिने के लिये धन्यवाद। इस अंक के विशेष आकर्षण स्वामीजी के बारे में अपनी बात तथा श्री राजशेखर के विचार हैं। नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ।

मयंक रावत, बरेली

हिन्दी के यशश्वी लेखक, चिन्तक विचारक डॉ. रूपर्ट स्नेल से आत्माराम शर्मा की बातचीत पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई और ज्ञानवर्धन भी हुआ। डॉ. रूपर्ट स्नेल से अनुरोध है कि वह बिहारी सतसई के अनुवाद पर अपने अनुभव अवश्य लिखें क्योंकि ऐसे अनुवाद वेहद चुनौते पूर्ण होते हैं इनमें सांस्कृतिक मूल्यों और भाव बोध के रूपांतरण का कार्य एक तरह से अनुवादकर्ता से पुनःसृजन की अपेक्षा रखता है।

रूपर्ट स्नेल बड़े भाग्यशाली हैं कि उन्हें पंडित रविशंकर, उस्ताद विलायत खान आदि का सानिध्य प्राप्त हुआ, उन्हें संगीत का जो रासायनिक संश्लेषण प्राप्त हुआ इस कारण वह न केवल भारतीय संस्कृति से जुड़े बल्कि भारतीय संस्कृति को और समूची मानवता के जीवन मूल्यों को समृद्ध कर रहे हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि संस्कृति जोड़ती है।

आपने जिसे राग बिहार मुद्रित किया है वहाँ उन्होंने संभवतः राग विहाग की चर्चा की है क्योंकि बिहार कोई राग नहीं होता।

उन्होंने साहित्य में क्या देखना चाहते हैं के उत्तर में कहा है कि जो संगीत में सुना जाता है - मेरे समक्ष सपष्ट नहीं हो सका है। क्योंकि संगीत में हम रंजकता के इच्छुक और रस के अभिलाषी होते हैं, विश्राम-सा चाहते हैं।

जबकि साहित्य में हमारी अपेक्षाएं मूलतः रस भी हो सकती हैं और इसके पाठक अलावा अपने मन को लेखक के लेखन से जोड़ कर अपने ही अव्यक्त को शब्द रूप में साकार देखना चाहता है और उससे तदाकार होना चाहता है, जिसमें द्वंद्व, निराशा, उत्साह सभी कुछ समाया होता है इस कारंण सहित्य का दायरा बड़ा ही होता है इसलिए डॉ. रूपर्ट स्नेल यदि कृपया इस पर अपना दृष्टिकोण और स्पस्ट कर सकें तो बेहतर होगा।

उन्होंने यह ठीक ही कहा है कि शिक्षित होने के लिए लिखने-पढ़ने की योग्यता आवश्यकता नहीं होती, जबकि आज के हिन्दी के छुटभैये और बड़े सभी साहित्यकार स्वयं को बुद्धिमान और अशिक्षित को अज्ञानी समझते हैं। डॉ. रूपर्ट स्नेल का यह कथन कितना सारगर्भित है कि लेखन कार्य तो घर बैठ कर अकेले में ही होता है जब आज का अधिकांश लेखन इंस्टेंट काफी या गरम समोसा की तरह तात्कालिक और दैनिक अखबार की तरह क्षणजीवी होता जा रहा है।

डॉ. स्नेल के निजी जीवन के फोटोग्राफ भी देने चाहिए थे। हम भारत के पाठक उनके यशश्वी जीवन की कामना करते हैं। गर्भनाल को इस साक्षात्कार के लिए बहुत धन्यवाद।

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

अनुरोध

पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि

प्रतिक्रियायें एवं रचनाएँ यूनिकोड में भेजें, हमें सुविधा होगी.

रचनाओं के साथ संक्षिप्त परिचय एवं फोटो भी भेजें.

अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित ईमेल पते पर भेजें :

garbhanal@ymail.com